देसहरियाणा
ISSN : 2454-6874
साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक 44-45, जनवरी-अप्रैल 2023

संपादक	सुभाष सैनी
सह-संपादक	अरुण कैहरबा
सम्पादन सहयोग	जयपाल, कृष्ण कुमार, राजकुमार जांगड़ा, विकास साल्याण
सलाहकार	प्रो. टी.आर. कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री, अशोक भाटिया, सत्यवीर नाहड़िया
प्रबंधन	कीर्ति सैनी, योगेश शर्मा, गुरदीप भोंसले
प्रकाशक	सत्यशोधक फाउंडेशन, 912 सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा
संपर्क	सुभाष चंद्र - 94164-82156 विकास साल्याण - 90501-82156
Email	haryanades@gmail.com
Website	desharyana.in
सहयोग राशि	एक प्रति ₹ 50 मात्र
व्यक्तिगत:	₹300 (वार्षिक) संस्था: ₹500 (वार्षिक) (पंजीकृत डाक खर्च समेत)
आजीवन:	₹5000 संरक्षक: ₹10000
ऑनलाईन भुगतान के लिए	Account Name Satyashodhak Foundation Bank Name Indian Bank, Sector -13 Account No. 50490177180 IFSC: IDIB000K849

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक, समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक सत्यशोधक फाउंडेशन, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा

अनुक्रम

संपादकीय

नफरत के बाजार में मोहब्बत की दुकान 03

कहानी

सुखबीर / दीवारों पर उड़ने वाला घोड़ा 06

आशा मुक्ता मिश्रा / बेड नम्बर दस 59

कविताएं

एस आर हरनोट 20

दीपक वोहरा 24

कुसुमाग्रज 75

विरासत

गगनदीप सिंह / सढ़ौरा और बाबा बंदा सिंह बहादुर 26

पुस्तक समीक्षा

गोपाल प्रधान / स्थापत्य में फ़ासीवाद 38

हरियाणवी साहित्य

करमचंद केसर 42

दीपक बिढ़ाण 43

आलेख

डॉ. अहिल्या मिश्रा / हिंदी साहित्य में महिला आत्मकथा लेखन 45

कार्यशाला

प्रोफेसर सुभाष सैनी / वक्ता के गुण 63

रपट

गुरदीप भोंसले / देस हरियाणा की स्थिति और भविष्य के कार्य 73

नफरत के बाजार में मोहब्बत की दुकान

वो जब जहाँ भी गया उस को साथ ले के गया
जो ख़्वाब नई इक दुनिया का उस की आँखों में पलता था

पिछले दिनों भारत की सड़कों पर एक वाक्य सुनाई दिया नफरत के बाजार में मोहब्बत की दुकान। यह वाक्य राहुल गांधी ने भारत जोड़ो यात्रा की टैग पंक्ति बन गई और बहुत ही लोकप्रिय हुई। शायद इसकी वजह यही रही है कि भारतीय समाज में धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा के नाम पर दूरियां बढ़ी हैं।

राहुल गांधी की यह यात्रा कन्याकुमारी से चल कर काश्मीर पहुंची। लगभग 4000 किलोमीटर का सफर पैदल तय किया। भारत विविधताओं का देश है। इस यात्रा ने भारत की भौगोलिक-सांस्कृतिक विविधता को रेखांकित करते हुए विविधताओं के बीच मौजूद एकसूत्रता की पहचान की। अनेक पेशों से जुड़े लोगों के साथ खुला संवाद निश्चय ही किसी राजनीतिक नेता, दल व राजनीतिक संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण साबित होता ही है, लेकिन इससे लोगों का लोकतंत्र में विश्वास भी बढ़ता है।

यात्राएं बहुत कुछ बदलती हैं। धारणाएं तोड़ती हैं, नई धारणाएं बनाती हैं। राहुल सांकृत्यायन तो यहां तक कहते हैं कि इस दुनिया को यात्रियों ने बनाया है। जब एक यात्री अपना सामान बाँध कर निकलता है तो वह इंसान बनता है। वह भांत-भांत के लोगों से मिलता है, भांत-भांत के प्रदेश देखता है, भांत-भांत की संस्कृति, भूगोल, रीति-रीवाजों से उसकी मुलाकात होती है। भांत-भांत के फूल, पेड़, पौधे, आबो-हवा से परिचित होता है।

महात्मा बुद्ध और उनका संघ साल के 8 महीने कभी एक जगह नहीं टिकता था। चौमासा में यात्रा न करना उनका नियम था। गुरु नानक थे जिन्होंने 26 साल तक यात्राएं करके जीवन का सार खोजा। फरीद, कबीर, रविदास, मीरा समेत भक्तिकाल के तमाम संत यात्री थे। लोगों को जोड़ने वाले, मोहब्बत फैलाने वाले। धर्म के नाम पर लोगों को ठगने वालों को हड़काने वाले। उन्होंने न मोलवी बख्से न पंडित। लोगों से कहा मोहब्बत से रहो और इन पाखंडियो के चक्कर में ना फसो।

महात्मा फूले और सावित्री फूले जब चले तो लोगों ने उन पर गोबर फेंका, कीचड़ फेंका, लेकिन वे बिना रुके चलते चले गये और शूद्रों-अतिशूद्रों व महिलाओं के लिए शिक्षा

का मार्ग खोल दिया। चारों तरफ फैले अंधकार में से सत्यशोधन किया और उस सत्यशोधक की मसाल आज तक जल रही है। बाबा साहेब अंबेडकर जब महाड़ तालाब की तरफ चले बराबरी, समानता की मांग का झंडा बुलंद हुआ।

इस यात्रा ने देश को एक सही तस्वीर दिखाई है। देश में बढ़ती गरीबी, महंगाई, बेरोजगारी, सदियों सो होता आ रहा जातिगत भेदभाव, सामाजिक न्याय का सवाल पटल पर खड़ा किया है। बहुत लंबे समय के बाद किसी नेता ने इतनी मुखरता से बात की है कि सरकारें जनता के प्राकृतिक-आर्थिक संसाधनों को कोड़ियों के भाव चंद पूंजीपतियों के लिए लुटा रही हैं।

हमारे देश में हाल-फिलहाल बहुत लंबे समय के बाद किसी राजनेता ने इस तरह की यात्रा की है जिसका प्रभाव आने वाले दशकों तक दिखाई देगा। कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक जिस तरह से भारत के दर्शन खुद किये और लोगों को करवाए हैं वह बेमिसाल है।

देश को बर्बाद करने के लिए, लोगों को धर्म, जात के आधार पर बांट कर लड़वाने के लिए भी हमारे देश में यात्रा चल रही है। एक भीड़ तंत्र खड़ा हो गया है, शासन और भीड़ तंत्र में कोई फर्क नजर नहीं आता। जगह-जगह दंगों की आग लगाई जा रही है, नफरत फैलाई जा रही है। लेकिन इस यात्रा से भारत जुड़ता दिखाई दे रहा है। मोहब्बत की दुकान खुलने लगी है।

देसहरियाणा पत्रिका के संपादक सुभाष चंद्र व सलाहकार सुरेंद्रपाल सिंह को भी राहुल गांधी से संवाद करने का अवसर मिला। संवाद के तुरंत बाद दोनों की त्वरित प्रतिक्रिया को यहां दर्ज करना अनुचित नहीं होगा।

"राहुल गांधी से बात करना दिलचस्प है। वे बौद्धिक विमर्श में दार्शनिक के जिज्ञासु भाव से रुचि लेते हैं। वरना एक राजनेता हरियाणा की संस्कृति में नाथों-सिद्धों के प्रभाव के बारे में सवाल क्यों करता। बुद्ध से नाथों का जुड़ाव किस तरह से है ये प्रतिप्रश्न करके ऐसा क्यों जानता. हरियाणा के शिवाले और लोक देवता गुग्गा पीर के बारे में उनकी दिलचस्पी उनकी बौद्धिक क्षमता व सीखने जानने की लालसा को दर्शाती है। राहुल गांधी से हुई बातचीत के आधार पर निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि राजनीति अभी संवेदनशीलता व अकादमिक जिज्ञासा से शून्य नहीं हुई। पं. जवाहरलाल नेहरू की सी प्रश्नाकूलता राहुल गांधी में है. कोई 'पप्पू' ये बहस नहीं कर सकता हां 'गप्पू' की बात अलग है। सभी विचारवान लोगों प्रेम सदभाव भाईचारे, समतामूलक मूल्यों व संविधान के मूल्यों को समाज में स्थापित करने के लिए प्रयास करने चाहिए और प्रयास करने वालों का सहयोग समर्थन व साथ देना चाहिए।"

सुरेंद्रपाल सिंह तत्काल लिखा था कि "चर्चा के मुख्य बिंदु थे - हरियाणा का लोकजीवन, सांस्कृतिक परिवेश, बुद्धिज्म, शैव और नाथ पंथ, लोकदेता गुग्गा पीर आदि आदि। राहुल गांधी

की इन विषयों पर गंभीर उत्सुकता किसी राजनीतिक व्यक्ति से हटकर है। उनके सवाल तीखे और खंगालने वाले थे। थोड़े से समय में इन विषयों पर संजीदगी से गहरे में जानने की प्यास ने वास्तव में प्रभावित किया। हरियाणा में नाथ पंथ के इतिहास, प्रसार और प्रभाव पर और अधिक जानने के लिए राहुल गांधी ने यात्रा के बाद मिलने का इरादा भी जताया।"

देस हरियाणा पत्रिका व अन्य साहित्य जब उनको दिया गया तो उन्होंने कहा वे इसको जरूर पढ़ेंगे। इस यात्रा के समूचे प्रभाव को फिर किसी अंक में समेटने की कोशिश रहेगी, लेकिन यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि इसने समाज को गहरे से प्रभावित किया है। राजनीतिक लोगों और दलों का जन-जीवन के समस्त पहलुओं से परिचय इसी तरह के महाप्रयास से ही संभव है और निश्चित रूप से इसका फल समाज को प्रत्यक्ष व परोक्ष तौर पर अनेक प्रकार से मिलता है।

साहित्य व कला जगत को इसने किस तरह से प्रभावित किया है इसके बारे में अभी निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन इस तरह की गतिविधियां निश्चित तौर पर साहित्य, संस्कृति व कला के क्षेत्र में भी अपनी सकारात्मक ऊर्जा का संचार करती हैं।

सामाजिक सरोकारों व प्रतिबद्धता से परिपूर्ण कहानियां, कविताएं, आलेख, पुस्तक समीक्षा व हरियाणवी साहित्य के साथ देसहरियाणा की गतिविधियों का परिचय देती रिपोर्ट इस अंक में आपके लिए प्रस्तुत हैं।

आशा है ये अंक आपको पसंद आयेगा।

सुभाष चंद्र

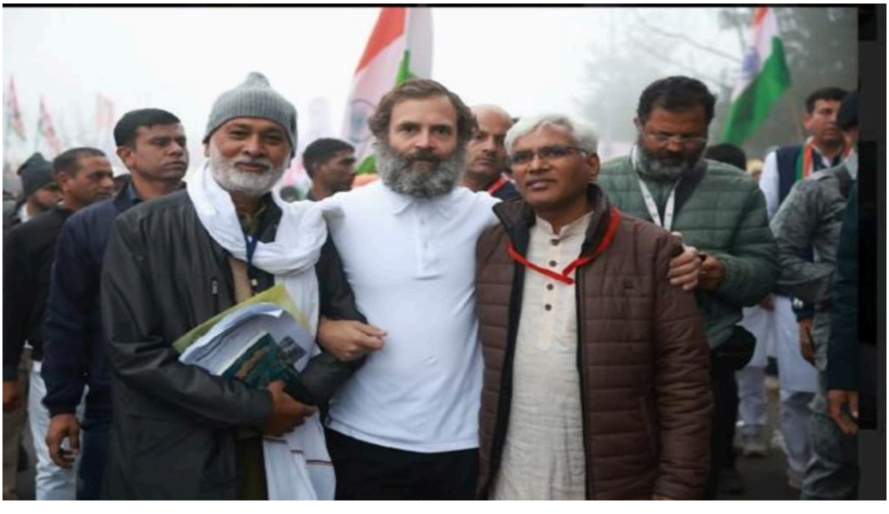

दीवारों पर उड़ने वाला घोड़ा

✍सुखवीर
पंजाबी से अनुवाद - मुलख सिंह

बन्टी बहुत खुश था। आज उसे पहली बार स्कूल जाना था। मेरे मन में खुशी भी थी और बेचैनी भी। इस उम्र में कभी मैं भी स्कूल गया होऊंगा, इसी तरह खुश, इसी तरह चाव-चाव में या शायद रोता हुआ। मैं बंटी में अपने धुंधले बचपन को देख रहा था। चीनी डिजाइन वाले कपड़े की बुश्शर्ट और निक्कर में वह बड़ा चुस्त लग रहा था। वह इसलिए खुश था कि उसने पहली की जगह दूसरी क्लास में दाख़िल होना था। पिछले साल सेहत कुछ ठीक न रहने के कारण उसको स्कूल में दाख़िल नहीं करवाया जा सका था और घर पर ही थोड़ा-बहुत पढ़ाया था। मैं उसका साल बचाना चाहता था। एक स्कूल के हैड मास्टर से मेरी जान-पहचान थी। मैंने उससे सलाह की तो उसने कहा कि बच्चे को दूसरी में दाख़िल कर लिया जाएगा।

मैं दफ्तर में गया तो हैड मास्टर ने तनिक खड़े होते हुए कुर्सी की ओर इशारा किया, "तशरीफ़ रखें।" फिर वह बंटी की ओर देखकर बड़ी उदारता से मुस्कराये।

मैंने बंटी से कहा, "नमस्ते कहो इनको।"

बंटी ने धीरे से दोनों हाथ ऊपर उठाकर जोड़े पर मुंह से कुछ नहीं बोला।

"नमस्ते।" हैड मास्टर ने प्यार से मुस्करा कर कहा, "आओ इधर आओ न।"

बंटी झिझका।

"आओ, बेटा आओ।" हैड मास्टर ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया।

बंटी धीरे-धीरे आगे बढ़ा। हैड मास्टर ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "शाबाश!"

और फिर कुछ अटक कर पूछा- "बहुत सुंदर नाम होगा तुम्हारा। क्या है भला?"

"बंटी। पिताजी बंटी कहते हैं, माताजी बंटु।"

"वाह-वाह।" हैड मास्टर ने कहा। "बहुत सुंदर नाम हैं दोनों ही। बंटी और बंटु। और भला, हम किस नाम से बुलाएं आपको?"

"आपको कौन सा नाम अच्छा लगता है?" बंटी ने बिना झिझक के पूछा।

हैड मास्टर ने सोचने का दिखावा करते हुए कहा, "भाई हमें तो दोनों नाम ही पसंद हैं। तो कहो तो दोनों नामों से ही बुलाया करेंगे बंटी-बंटु....."

बंटी अचानक हंसा। "ऐसी आवाज तो हमारे क्लॉक में से आया करती है, टंटी-टंटु, टंटी-टंटु।"

हैड मास्टर खिलखिला कर हंस पड़े। "वाह ! तुम तो सचमुच बहुत होशियार लड़के हो। टंटी-टंटु, बंटी-बंटु। हा..हा ..हा...."

बंटी मेरी तरफ देख कर मुस्कराया। मैं भी मुस्कराया।

"तुम्हारे पिताजी ने बताया था कि तुम्हें बहुत सारी कविताएं याद हैं।" हैड मास्टर ने कहा।

"नौ हिंदी की, तीन इंग्लिश की।"

"भला कुल कितनी हो गई?"

बंटी ने हाथ उठाकर उँगलियों पर गिना और कहा, "बारह।"

"बिल्कुल ठीक। अब भला सुनाओ ना कोई कविता।"

बंटी ने मेरी तरफ देखा, जैसे पूछना चाहा हो कि कौन सी सुनाए।

"कोई भी सुना।", मैंने कहा।

बंटी ने कुछ सोचा और एक कविता चुनी। तब वह एक्टिंग के साथ सुनाने लगा।

"बहुत अच्छे!" कविता पूरी होने पर हैड मास्टर ने उसकी पीठ थपथपा कर शाबाशी दी। फिर वह मेरी ओर मुड़े। "बड़ा होनहार बच्चा है। इंटेलिजेंट भी है और संवेदनशील भी। ऐसे बच्चों को अगर ठीक तरह से हैंडल किया जाए तो वे क्या नहीं बन सकते। आसमान छू सकते हैं।"

"बस अब यह आपके हाथों में है।", मैंने कहा।

हैड मास्टर एक पल चुप रहे। फिर उन्होंने कुछ गंभीर होकर कहा, "ऐसे बच्चों को देखकर कई बार मैं सोचता हूं कि हमारे स्कूल इनके लिए नहीं बने हैं। पता नहीं, वे स्कूल कब जन्म लेंगे, जिनमें बच्चे टूटेंगे नहीं। अच्छे स्कूल, जिनमें योग्य अध्यापक पढ़ाएंगे। आजकल तो आमतौर पर वे लोग ही अध्यापक बनते हैं जिन्हें और कहीं अच्छी नौकरी नहीं मिलती। फिर खूंटों की तरह गड़ जाते हैं स्कूल में, और निकलने का नाम नहीं लेते। इस स्कूल से कुछ ऐसे खूंटों को मैंने बड़ी मुश्किल से उखाड़ा है।"

मैं वर्तमान स्कूलों के बारे में पहले भी कई बार हैड मास्टर की बातें सुन चुका था। वे आज के तालिमी ढंग से संतुष्ट नहीं थे पर कुछ कर नहीं सकते थे। हां, अपने स्कूल में उन्होंने बहुत कुछ किया था। इस स्कूल में आए हुए उन्हें तीन वर्ष हो चुके थे। इससे पहले वह एक अन्य स्कूल में अध्यापक थे। वहां उन्होंने लगभग बीस वर्ष तक पढ़ाया था। बहुत ही कामयाब अध्यापक थे वो। अध्यापक होकर सिर्फ अच्छा पढ़ा ही सकते थे, स्कूल को नया रूप नहीं दे सकते थे। पर इस स्कूल में हैड मास्टर बनने पर उनके सामने नई संभावनाएं आई थीं और उन्होंने स्कूल को धीरे-धीरे नया रूप देना शुरू किया था। वैसे भी उस स्कूल को नया रूप देना आसान काम नहीं था– ख़ासकर ऐसे पुराने स्कूल को, जो ग़लत ढांचे में खड़ा था और बड़ी ग़लत हालत में चल रहा था। फिर भी उन्होंने उसको बदला था, उसमें कई तरह के नए प्रयोग किए थे और आज यह स्कूल शहर के सबसे अच्छे स्कूलों में गिना जाता था। तालिमी महकमे के इंस्पेक्टरों और अन्य स्कूलों के अध्यापकों में हैड मास्टर के नाम की चर्चा थी। पिछले साल तीन स्कूलों ने उनसे काफी अच्छी तनख़्वाह पर अपने पास आने के लिए बुलाया था पर वह गए नहीं। उन्होंने सोचा था कि नए स्कूल में जाकर पुनः नए सिरे से काम करना पड़ेगा और तब अपने इस स्कूल में किया हुआ उनका काम व्यर्थ चला जाएगा। वैसे वह अपने इस स्कूल से भी पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे क्योंकि वे उसे वैसा आदर्श स्कूल नहीं बना पा रहे थे, जैसे स्कूल की वे कल्पना किया करते थे। साथ ही, वे यह भी कहा करते थे कि देश के वर्तमान सामाजिक ढांचे में आदर्श स्कूल का बनना किसी तरह भी संभव नहीं है।

वे मेरे साथ कुछ देर स्कूल के बारे में बातें करते रहे। आखिर उन्होंने एक काग़ज़ लिया और उस पर लिखने लगे। तब उन्होंने वह काग़ज़ मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "बच्चे का टेस्ट लेने के लिए लिख दिया है। तीन अध्यापकों के नाम हैं इस पर। आप बच्चे को उनके पास ले जाएं। औपचारिकता ही है यह। मामूली सा टेस्ट होगा।" फिर उन्होंने घंटी बजाई और बंटी की ओर मुड़े। "तो दूसरी में दाख़िल होने पर पेड़े खिलाओगे ना?"

"पेड़े नहीं, लड्डू", बंटी ने कहा। "पिताजी कहते थे कि लड्डू बाटेंगे।"

हैड मास्टर हंसे। "लड्डू ही सही। पर पहले हम आपको चॉकलेट खिलाएंगे।" उन्होंने मेज की दराज में से चॉकलेट का एक पैकेट निकालकर उसकी ओर बढ़ाया।

बंटी लेने से झिझका, तो मैंने कहा, "ले-लो।"

बंटी को अभी भी झिझक थी।

मैंने फिर कहा, "ले लो, जो भी बच्चा स्कूल में दाख़िल होने के लिए आता है उसे यह चॉकलेट देते हैं।"

बंटी ने पैकेट पकड़ लिया और धीरे से कहा, "थैंक यू।"

"नो मेनशड़ ,नो मेनशड़।" हैड मास्टर ने बंटी की दोनों गालों को सहलाया। "बहुत अकलमंद बच्चा है।"

तभी चपरासी अंदर आया तो हैड मास्टर ने टेस्ट लेने वाले तीनों अध्यापकों के नाम उसको बताए और मुझे उनके पास ले जाने के लिए कहा।

पहले अध्यापक, जिसकी कक्षा में चपरासी मुझे लेकर गया, का नाम सूर्य प्रताप सिंह था। वह पहली कक्षा थी। उस समय पीछे कोने में बैठे दो लड़के आपस में झगड़ रहे थे और सूर्य प्रताप सिंह उन्हें डांट रहा था। बड़ी रोबदार आवाज थी, उसकी। कुछ और बच्चे भी शोर कर रहे थे। उसने दो-तीन बार मेज पर हाथ मारा तो बच्चे चुप हो गए। पर कोने में बैठे दोनों लड़के अभी भी कुछ-कुछ लड़ रहे थे। वे बैंच के नीचे एक दूसरे को टांगे मारते हुए लग रहे थे। मैं दरवाजे में खड़ा सोच रहा था कि सूर्य प्रताप सिंह मेरी और देखे तो आगे बढ़ूं। उसको देखकर मुझे कुछ हैरानी भी हो रही थी। उसने नीली बुश्शर्ट और खाकी पतलून पहनी हुई थी। कद काठ का वह इतना ऊंचा-लंबा था कि उन बच्चों के सामने खड़ा बहुत ही बड़ा लग रहा था। वह किसी छोटी कक्षा का अध्यापक लगता ही नहीं था। मैंने सोचा, इसको तो बड़ी कक्षाओं को पढ़ाना चाहिए- नौवीं, दसवीं को। बल्कि कॉलेज के विद्यार्थियों को।

तभी उसने मेरी ओर देखा। मैं खड़ा रहा। वह वैसे ही मेरी ओर देखता रहा। तब मैं आगे बढ़ा और हैड मास्टर वाला काग़ज़ उसे दे दिया। वह काग़ज़ लेकर कुर्सी पर बैठ गया और कुछ देर उसे पढ़ता रहा फिर उसने पूछा, "कहां है लड़का?"

मैंने बंटी की ओर इशारा किया।

"आपका बेटा है?" उसने पूछा।

"जी।"

वह काग़ज़ को दोबारा देखने लगा। शायद दूसरी बार पढ़ने लगा था। मुझे अजीब सा लगा। आखिर दो ही तो पंक्तियां थीं काग़ज़ पर- साफ लिखी हुई और साफ अर्थ वाली। और उनके नीचे तीनों अध्यापकों के नाम थे। भला इतनी देर क्यों लगा रहा है? मैंने सोचा और उसकी और देखता रहा। वह कुर्सी पर बैठा हुआ भी काफी बड़ा लग रहा था। एक बार मेरी नजर बच्चों की ओर मुड़ी तो वे मुझे और भी छोटे-छोटे लगने लगे। वे कुछ हैरानी के साथ मुझे देख रहे थे और शोर करना भूल गए थे।

"इधर आ।", सूर्य प्रताप सिंह ने बंटी से कहा।

बंटी उस से कुछ दूर खड़ा था। वह वहीं खड़ा रहा और हैरान आंखों से उसकी ओर देखता रहा।

"इधर आ भई।", सूर्य प्रताप ने कुछ और ऊँची आवाज में बुलाया। मैंने मन ही मन कहा, जरा धीरे बुला। पास ही तो खड़ा है, और अच्छी तरह सुन सकता है।

बंटी आगे न बढ़ा तो मैंने उसको बाजू से पकड़कर धीरे से आगे किया और हौसला दिया, "डरो मत। ये कुछ नहीं कहेंगे।"

सूर्य प्रताप सिंह ने सामने विद्यार्थियों की ओर मुंह फेरकर कहा, "एक किताब लाओ जरा !"

आठ-दस विद्यार्थी अपनी-अपनी पुस्तकें लेकर उसकी ओर दौड़े। उसने एक की किताब ली तो दूसरे ने कहा, "पहले मैं लाया था। मेरी लें।"

"नहीं, पहले मैं आया हूँ, मेरी पकड़ें।" एक और विद्यार्थी ने अपनी पुस्तक आगे बढ़ाते हुए कहा।

"भागो यहां से!" सूर्य प्रताप सिंह ने मेज पर हाथ मार कर कहा।

सभी विद्यार्थी भागे और अपनी-अपनी जगह पर जाकर बैठ गए।

सूर्य प्रताप सिंह ने किताब खोली और मुझे कहा, "आप जरा बाहर जाएं।" फिर, उसने बंटी से कहा, "जरा पढ़ना यहां से।"

मैं दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया। बंटी ने एक बार मेरी ओर मुड़कर देखा। फिर वह किताब की ओर देखने लगा, पर चुप रहा।

"पढ़ो भई।", सूर्य प्रताप सिंह ने कहा। "चुप क्यों खड़ा है?"

बंटी ने फिर मुड़कर मेरी ओर देखा।

मैंने आगे बढ़ कर उसे हौसला देते हुए कहा, "पढ़ दो। यह पाठ तो तुम्हें आता है।"

"आप कृपा करके बाहर ही रहें।", सूर्य प्रताप सिंह ने मुझे कहा। फिर उसने बंटी से कहा, "पढ़ो, पढ़ोगे नहीं तो पास कैसे होगे? फेल हो जाओगे, तो पहली में ही बैठना पड़ेगा। समझे? हां पढ़ो।"

बंटी ने किताब हाथ में ले ली। उस समय उसके हाथ कांप रहे थे। मैंने उसे कहना चाहा कि किताब मेज पर रखकर पढ़े, पर चुप रहा और दरवाजे में ही खड़ा रहा।

बंटी ने पढ़ना शुरू किया, "एक—एक था" और वह रुक गया।

"आगे पढ़ो। आता है या नहीं? और ठीक तरह पढ़ो।"

"एक था—एक था— किसान।" बंटी ने फिर पढ़ना शुरू किया। "वह एक गांव—एक गांव— में रहता था। उस—उस— गांव में......"

बंटी ने अटक-अटक कर दो पंक्तियां और पढ़ लीं। सूर्य प्रताप सिंह ने उसके हाथों में से किताब ले ली और पूछा, "लिखना आता है?"

बंटी ने हां में सिर हिलाया।

"बोल कर बताओ कि आता है।", सूर्य प्रताप सिंह ने कहा। "बोलना नहीं आता है क्या?" तभी उसने विद्यार्थियों की ओर मुड़कर कहा, "एक स्लेट लाओ जरा। और स्लेटी भी।"

इस बार फिर कई विद्यार्थी स्लेट लेकर उसकी ओर दौड़े। उसने एक से स्लेट और स्लेटी ली और मेज पर हाथ मार कर सबको भगा दिया।

"लिखो," उसने स्लेट बंटी के सामने रखकर कहा, "भगवान एक है।"

बंटी कांपते हुए हाथों से लिखने लगा।

सूर्य प्रताप सिंह ने तीन वाक्य लिखवाये और बंटी से स्लेट लेकर पढ़ने लगा।

इसके बाद उसने हैड मास्टर वाला काग़ज़ उठाया और उस पर कुछ लिखने के लिए मेज पर झुका।

मैं आगे बढ़ा।

उसने अपने नाम के सामने लिखे हुए 'हिंदी' शब्द के आगे नंबर लिखे और उसके सामने अपने पूरे नाम के लंबे से हस्ताक्षर कर दिए। मैंने देखा, उसने बंटी को बीस में से चार अंक दिए थे। इतने कम अंक देख कर मुझे दुख हुआ। तभी सूर्य प्रताप सिंह ने मेरी ओर मुड़कर कहा, "बहुत कमजोर है हिंदी में, आप इसे पहली कक्षा में ही क्यों नहीं दाख़िल करवा देते? पक्का होकर दूसरी में जाएगा।"

मैंने कहा, "थोड़ा घबरा गया है वर्ना यह किताब तो बड़ी अच्छी तरह पढ़ लेता है।"

"नहीं, दूसरी के लायक नहीं पढ़ सकता।" सूर्य प्रताप सिंह ने काग़ज़ मेरी ओर बढ़ाया।

मैं कुछ और कहना चाहता था, पर चुप रहा और बंटी को लेकर बाहर आ गया। बाहर आकर मैं कुछ देर बरामदे में खड़ा रहा। ऐसे लगा, जैसे बीस में से चार अंक बंटी को नहीं, मुझे मिले हों। एक बार बंटी पर गुस्सा भी आया कि क्यों इतना डर गया था। पर मैं संभला। इसे कुछ नहीं कहना चाहिए, मैंने मन ही में कहा। फिर मैंने काग़ज़ से दूसरे अध्यापक का नाम पढ़ा— श्री अवध नारायण चतुर्वेदी। इतने लंबे नाम से मेरे सामने सूर्य प्रताप सिंह से भी लंबी-चौड़ी डील-डौल वाला आदमी आया। मुझे घबराहट हुई। मैंने उससे नीचे वाला नाम पढ़ा—कुमारी शीला गुप्ता। और मैंने सोचा कि अवध नारायण चतुर्वेदी के पास जाने की जगह पहले इसके पास जाएं तो अच्छा रहेगा। लड़की है, बच्चे से जरा नरमी से बात करेगी और अवध नारायण चतुर्वेदी ने 'सामान्य ज्ञान' का टेस्ट लेना है। क्या पता, उल्टी-सीधी बातें पूछे और बंटी डर जाए और उसके बाद शीला गुप्ता के पास जाकर गणित के सवाल भी ठीक ढंग से न कर सके।

मैं दफ्तर में चपरासी से मिला। वह मुझे शीला गुप्ता की कक्षा में ले गया। वह दूसरी कक्षा थी। उस कक्षा में चुप्पी छाई हुई थी। सभी विद्यार्थी एकदम शांत बैठे थे।

शीला गुप्ता ने मेरे हाथ से काग़ज़ लेकर उसे एक नजर देखा और फिर बंटी की ओर देखकर मंद-मंद मुस्कराई।

मुझे उसका मुस्कराना अच्छा लगा। वह खुद भी अच्छी लगी। और मैंने सोचा कि वास्तव में बच्चों को पढ़ाने का काम तो औरतों को ही करना चाहिए। तभी मुझे उस पर कुछ तरस भी आया। लगभग पेंतीस वर्ष की उम्र थी उसकी, और सूखा हुआ कमजोर चेहरा। क्या इसकी जिंदगी में खुशी नहीं है? मैंने सोचा। नहीं तो इस तरह मुस्कराने वाली लड़की का चेहरा तो फूल की तरह ताजा और खिला हुआ होना चाहिए। उसका लिबास भी साधारण सा ही था- कुछ पुराने फैशन का और नाप से कुछ खुला; हल्के गुलाबी रंग का सूती ब्लाउज़, जिसकी कोहनियों तक बाहें थीं और हल्के हरे रंग की रेशमी साड़ी, जो पांवों से थोड़ा सा ऊपर बंधी हुई थी। नीचे उसके काले रंग के सैंडल पूरी तरह दिखाई दे रहे थे। वे सैंडल भी उसके चेहरे की तरह ही रूखे थे। न चेहरे पर मेकअप था, न सैंडल पर पॉलिश थी। तब मुझे उस पर और भी दया आई, और मैंने मन ही मन कहा, बेचारी मास्टरनी !

"क्या नाम है तुम्हारा?" वह बंटी से पूछ रही थी।

बंटी डरा नहीं पर धीमी आवाज में बोला, "बंटी।"

"यह कैसा नाम है!" शीला गुप्ता ने हैरानी के साथ कहा और मुस्कराई। "यह तो लड़कियों जैसा नाम है। क्या तुम लड़की हो?"

बंटी ने जवाब नहीं दिया और चुप रह कर उसकी ओर ताकता रहा। अगर उसकी उम्र के किसी लड़के ने उसे लड़की कहा होता, तो वह उसके मुंह पर थप्पड़ दे मारता।

"ख़ैर, तुम्हारा असली नाम क्या है?" शीला गुप्ता ने पूछा।

"बंटी।"

"यह तो वैसे ही बुलाने का नाम हुआ। असली नाम क्या है?"

मैंने कहा, "नाम अभी तक रखा नहीं है। बंटी कह कर ही बुलाते हैं।"

इस बार उसने हैरानी के साथ मेरी ओर देखा, पर मुस्कराई नहीं। "तो बिना नाम के इसे दाख़िल कैसे करवाएंगे? दाख़िले का फार्म कैसे भरेंगे?"

"तब तक कोई नाम रख देंगे।" मैंने कहा। "या बंटी ही रहने देंगे। बाद में बदल लेंगे।"

"बाद में बदलने में बड़ा झंझट होगा।"

"तो पहले ही कोई रख लेंगे। कल फार्म भरना है, कल तक कोई नाम सोच लेंगे।"

"इसे दूसरी में भर्ती करवाना चाहते हैं?"

"जी।"

"पहली कक्षा में कहाँ पढ़ता था?"

"घर में ही पढ़ता था। इसलिए तो यह टेस्ट लिया जा रहा है।"

“क्या आपने इसका पहली में कहीं भी दाख़िला नहीं करवाया?” उसे जैसे मेरी बात पर यक़ीन ही न हुआ हो।

“नहीं।”

“क्यों?”

“इसकी सेहत ठीक नहीं रहती थी।”

“उम्र कितनी है इसकी?”

“लगभग छह वर्ष।”

“छह वर्ष!” उस ने हैरानी से बंटी की ओर देखा।

“जी,” मैंने कहा।

“तब तो यह दूसरी में दाख़िल नहीं हो सकेगा।”

“मैंने हैड मास्टर से पूछा था। उन्होंने कहा है कि दूसरी में दाख़िल हो सकेगा।”

“नहीं हो सकेगा,” शीला गुप्ता ने आत्मविश्वास से कहा। “कम से कम छह वर्ष की उम्र तो पहली कक्षा के लिए ही चाहिए।”

“अब शायद रूल बदल गया है। आप टेस्ट ले लें। हैड मास्टर साहब खुद इस मसले को हल कर लेंगे।”

“नियम नहीं बदला है।” शीला गुप्ता ने पुनः उसी आत्मविश्वास के साथ कहा। “वैसे भी जब इसे पहली कक्षा में ही दाख़िल करवाना है, तो टेस्ट लेने का क्या फायदा? पहली कक्षा में तो टेस्ट की जरूरत नहीं पड़ती। पहली में—”

“पहली में नहीं”, मैंने उसकी बात काटते हुए कहा,”दूसरी में दाख़िल करवाना है।”

“पर दूसरी में कैसे हो सकेगा? या फिर, इसकी उम्र ज्यादा लिखवा दें। पर उसमें भी बाद में झंझट होगा।”

मैं चुप रहा।

एक पल शीला गुप्ता भी चुप रही। फिर, उसने कहा, “ख़ैर, हैड मास्टर ने टेस्ट लेने के लिए लिखा है, तो लेना ही पड़ेगा।”

“हैड मास्टर भी बस अजीब हैं!” तभी उसने बुरा सा मुंह बनाया। “ख़ैर, इसको आपने घर में पढ़ाया ही होगा? पहाड़े भी याद करवाए होंगे? और गिनती सौ तक आती होगी? पहली के कोर्स में सौ तक गिनती है और दस तक पहाड़े। और सवाल भी करवाए होंगे—जोड़ घटा के?”

“पूछ लें इसको?” मैंने उसके सभी सवालों के जवाब में कहा।

“दस तक पहाड़े आते हैं न?” उसने बंटी से पूछा।

बंटी ने हां में सिर हिलाया।

"अच्छी तरह आते हैं?"

बंटी ने फिर हां में सिर हिलाया।

"अच्छा सुनाओ तो छह का पहाड़ा, देखना, भूलना मत, ठीक ठीक सुनाना।"

बंटी सुनाने लगा और 'छह छक्के' कहकर रुक गया।

"आगे?" शीला गुप्ता ने कहा।

बंटी सोचता हुआ चुप रहा।

"ख़ैर, यहां तक ही सही", शीला गुप्ता ने कहा।

इसके बाद वह गिनती लिखवाने लगी। गिनती लिखवाते-लिखवाते ही उसने हैड मास्टर वाले काग़ज़ पर 'गणित' के सामने अंक लिखे–बीस में से सात। फिर, उसने मुझे कहा, "ख़ैर, पासिंग अंक दे दिए हैं। आपको शुरू से ही इसका ख़्याल रखना होगा, नहीं तो चलेगा नहीं दूसरी में। हमारे स्कूल में हर साल ज्यादातर विद्यार्थी गणित में फेल होते हैं, क्योंकि शुरू से ही गणित की ओर ध्यान नहीं देते। मैंने कई बार कहा भी है हैड मास्टर को। ख़ैर, मैं भी ख़्याल रखूंगी। वैसे, आप भी घर में ख़्याल रखना। पर छह साल की उम्र है, तो यह दूसरी में दाख़िल नहीं हो सकेगा हो। हो सके, तो उसकी उम्र ज्यादा लिखवा देना। पर बाद में झंझट होगा।"

"धन्यवाद", मेरे मुंह से निकला। मैं जाने ही लगा था कि रुका और पूछा, "कितना अर्सा हो गया है आपको यहां?" मैं जानना चाहता था कि आखिर वह क्या 'चीज' थी।

"मैट्रिक के बाद यहां ही हूं। यह सोहलवां साल है।"

"सोहलवां साल!" उसने ऐसे कहा जैसे वह उसकी उम्र का सोहलवां साल हो। और मैंने मन में कहा, शीला देवी, तुम्हारी उम्र में कभी सोहलवां साल आया भी होगा? तभी मैंने उसको कहा, "काफी शौक लगता है आपको पढ़ाने का?"

"जी हां।"

"तुम्हारे पतिदेव भी इसी लाइन में होंगे? या—"

"जी नहीं, मैं विवाहित नहीं हूं।", उसने कुछ गर्व से कहा।

"ओह,माफ करना। मैं समझा था—", मैंने बात पूरी नहीं की और मन में कहा, वैसे भी तुम्हारे जैसी सूखी हुई भिंडी से शादी करेगा भी कौन? पर फिर भी, तुम्हें विवाह करवा लेना चाहिए, शीला देवी, तो जो तुम्हारे चेहरे पर रौनक आए और क्लास में ये छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां ऐसे पत्थरों की तरह चुपचाप न बैठें। आखिर तुम्हारी क्लास में यह पथराई हुई चुप्पी क्यों है? क्यों भयभीत हुए बैठे हैं ये बच्चे तुम्हारे सामने?.....

शीला गुप्ता कह रही थी, "....असल में, मैं शुरू से ही विवाह के ख़िलाफ़ रही हूं।"

"क्यों?" मैंने दिलचस्पी से पूछा।

"झंझट है!" उसने कहा। "तब, शायद मैं पढ़ा न सकूं।"

"क्यों?"

"क्या पता, घर की चारदीवारी में ही बैठना पड़े।"

"तब तो तुम्हारी बड़ी कुर्बानी है— इन बच्चों की ख़ातिर!" मैंने व्यंग्य से कहा।

शीला गुप्ता ने व्यंग्य समझा नहीं बल्कि खुश होकर मुस्कराई और धीरे से मेरे हाथ से काग़ज़ लेकर उस पर सात की जगह दस अंक कर दिए।

मैं धन्यवाद न कर सका।

****

अब मुझे श्री अवध नारायण चतुर्वेदी के पास जाना था। मुझे घबराहट होने लगी। मैंने सोचा, भला जिस आदमी का नाम ही इतना लंबा है, वह आदमी…….. ख़ैर। वैसे नाम में क्या रखा है। और फिर, जो होगा, देखा जाएगा।

मैं अवध नारायण चतुर्वेदी की क्लास के पास पहुंचा तो बच्चों की एक साथ खिलखिला कर हंसने की आवाज कानों में गूंजी। वह एक मिनट धीमी पड़ी और पुनः गूंजी। मैं आगे बढ़ा, तो खिड़की में से देखा कि मेज के पास धोती-कुर्ता पहने औसत कद का एक आदमी खड़ा था। बीस-इक्कीस वर्ष की उम्र थी उसकी और सांवला रंग। मैंने मन में ही कहा, तो यह है- श्री अवध नारायण चतुर्वेदी! यह तो 'धोती-प्रसाद' लगता है। उस समय वह बच्चों कोकुछ बता रहा था। जब मैं दरवाजे के पास पहुंचा, तो बच्चे एक बार फिर खिलखिला कर हंसे। अवध नारायण चतुर्वेदी ने मुझे दरवाजे के पास खड़े देखा, तो विद्यार्थियों की ओर हाथ उठाकर, चुप रहने का संकेत करते हुए, मेरी ओर आया। "बताएं", उसने मेरे पास आकर कहा। "मुझसे कोई काम है?"

मैंने बिना कुछ बोले मुख्याध्यापक वाला काग़ज़ उसकी ओर बढ़ा दिया। उसने लेकर एक नजर देखा और कहा, "आएं, अंदर आएं।"

मैं बंटी को लेकर मेज के पास गया। अवध नारायण चतुर्वेदी ने एक बार कुर्सी की ओर देखा, जैसे बैठना चाहा हो, पर बैठा नहीं। तब उसने बंटी की ओर देखा, और हल्का सा मुस्कराया। वह कुछ पल मुस्कराता रहा। फिर, उसने कहा, "तुम्हारी यह बुश्शर्ट तो बहुत सुंदर है। हम भी लाएंगे ऐसी ही एक।"

बंटी ने एक बार अपनी बुश्शर्ट की ओर देखा और पुनः अवध नारायण की ओर देखने लगा, पर चुप रहा।

अवध नारायण ने फिर कहा, "अगर बाजार से न मिली तो आप से ही यह ले लेंगे। दोगे न?"

"यह तो छोटी है, आप बड़े हैं।", बंटी ने कहा। "आपको कैसे आएगी?"

"हम छोटे बन जाएंगे।"

"बड़े छोटे नहीं बन सकते," बंटी ने जैसे समझाते हुए कहा। "छोटे बड़े बन सकते हैं।"

"वह कैसे?" अवध नारायण ने हैरानी जाहिर की।

"रोज दूध पीकर।"

"तो तुम रोज दूध पीते होगे। भला कितना दूध पीते हो?"

"एक गिलास सुबह, एक गिलास शाम।"

"वाह! इस तरह तो तुम बहुत जल्दी बड़े हो जाओगे। अच्छा, भला किस जानवर का दूध पीते हो?"

"भैंस का।"

"भैंस के बिना और कौन-कौन से जानवर दूध देते हैं?"

"गाय। और— बकरी।"

"इनमें से कौन सा जानवर तुम्हें सबसे अच्छा लगता है?"

बंटी ने कुछ सोचा। "मुझे तो घोड़ा सबसे अच्छा लगता है।"

"अच्छा! वह क्यों?" अवध नारायण मुस्कराया।

"घोड़ा बहुत तेज दौड़ता है। और घोड़े पर बैठकर शिकार भी खेलते हैं।"

"किसका शिकार? बिल्ली का?"

"शेर का!" बंटी ने गर्व से कहा।

"तो तुम शेर का शिकार कर सकते हो?"

"असली बंदूक हो, तो कर सकता हूं।"

"तो क्या तुम्हारे पास नकली बंदूक है?"

"जी। वह तो चिड़िया को भी नहीं मार सकती। पर पिताजी कहते हैं कि मैं दूध पीकर बड़ा हो जाऊंगा, तो मुझे असली बंदूक लेकर देंगे।"

"और साथ में घोड़ा भी न?" अवध नारायण ने कहा और मेरी तरफ देख कर मुस्कराया।

बंटी ने मेरी ओर देखा, जैसे पूछा हो, ले दोगे न?

"हां, घोड़ा भी ले देंगे तुम्हारे पिताजी। ", अवध नारायण ने मेरी ओर से कहा। "अच्छा, बताओ तो भला, कैसा घोड़ा लोगे? कितनी टांगों वाला?"

"सारे घोड़े चार टांग वाले तो होते हैं," बंटी ने कहा, "पर मैं उड़ने वाला घोड़ा लूंगा।"

"वाह-वाह ! फिर तो बहुत बड़े-बड़े पंख होंगे उसके?"

"नहीं, उसके पंख नहीं हैं। वह तो जादू से उड़ता है।"

“जादू से? भला ऐसा भी कोई घोड़ा होता है?”

“एक कहानी में ऐसा ही घोड़ा है। उसकी फोटो भी है किताब में मेरे पास।”

“वह कहानी आती है तुम्हें?”

“आती है। और भी बहुत सी कहानियां आती हैं।”

“हमें सुनाओगे?”

“सुनाऊंगा।”

“बहुत अच्छे!” अवध नारायण ने बंटी की पीठ थपथपाते हुए कहा। तभी वह काग़ज़ पर अंक लिखने लगा। एक ओर उसने गणित और हिंदी के अंक देखे और फिर ‘सामान्य ज्ञान’ के सामने बीस में से अठारह अंक लिखे। और अपने छोटे से हस्ताक्षर किए। इसके बाद उसने पुनः गणित और हिंदी के अंकों की ओर देखते हुए कहा,“बच्चा तो बड़ा होशियार है, पर गणित और हिंदी में काफी कम अंक मिले हैं।”

मैं उसे बताने ही लगा था कि उसने मुस्कुराकर कहा, “जरा ठहरें।” फिर कक्षा की ओर मुड़कर मॉनिटर से कहा, “पहली कक्षा में जाकर हिंदी की पुस्तक लाओ।”

“जी अच्छा।” मॉनिटर फुर्ती के साथ उठा और चला गया।

“यह कौन सी कक्षा है?” मैंने अवध नारायण से पूछा।

“दूसरी।”

“आप कौन-कौन सी कक्षाओं को पढ़ाते हैं?”

“दूसरी और तीसरी को।”

“और ये दोनों अध्यापक?” मैंने काग़ज़ की ओर संकेत किया।

“यह भी दूसरी और तीसरी को। एक पहली को भी, जो सूर्य प्रताप सिंह हैं।”

मॉनीटर किताब लेकर आया तो अवध नारायण ने उसे एक जगह से खोल कर बंटी की ओर बढ़ाते हुए कहा, “यह पाठ सुनाना तो।”

बंटी किताब लेकर पढ़ने लगा। वह पहली पंक्ति पर थोड़ा सा अटका और फिर ऐसे पढ़ने लगा जैसे जुबानी सुना रहा हो।

“शाबाश !" अवध नारायण ने बंटी से किताब ले ली और काग़ज़ पर हिंदी के सामने लिखे चार अंकों की ओर संकेत करते हुए मुझे कहा, “दिल करता है कि इस चार के साथ एक लगाकर चौदह बना दूं पर मेरे हाथ में इतनी ताकत नहीं है। वैसे, हैड मास्टर साहब खुद ही समझ जाएंगे। वे सोचेंगे कि कहीं गड़बड़ जरूर है। या इन चार अंकों में, या मेरे दिए अठारह अंकों में।” उसने काग़ज़ मेरी ओर बढ़ाया।

तब उसने बंटी की ओर मुड़ कर कहा, "अच्छा, कल से आओगे न स्कूल? हम आपसे कहानी सुनेंगे। और खुद भी तुम्हें कहानी सुनाएंगे–उड़ने वाली घोड़े की कहानी, जिसमें–"

"वह तो मुझे आती है।" बंटी ने कहा।

"तो तैरने वाले घोड़े की कहानी सुनाएंगे, जो समुंदर में एक बहुत बड़े मगरमच्छ से लड़ाई करता है। .... और फिर, एक लोहे के घोड़े की कहानी—"

"भला लोहे का घोड़ा भी होता है?" बंटी ने अविश्वास से पूछा।

"लोहे का घोड़ा, यानी रेलवे इंजन," अवध नारायण ने कहा। "अभी-अभी मैं इन बच्चों को लोहे के घोड़े की कहानी सुना रहा था।"

बंटी हंसने लगा। उसको शायद अजीब लगा था कि इंजन को लोहे का घोड़ा कहा गया था।

आखिर, अवध नारायण ने मेरी और मुड़कर कहा, "अच्छा, तो अब आप हैड मास्टर साहब से मिल लें। बच्चे को दूसरी कक्षा में दाख़िला मिल ही जाएगा।"

"धन्यवाद," मैंने बड़ी गर्मजोशी से कहा। "बड़ी खुशी हुई आपको मिलकर ! कब से हैं इस स्कूल में?"

"जी, तीसरा वर्ष जा रहा है।"

"बड़ी अच्छी लाइन चुनी है आपने। बच्चों को आप जैसे अध्यापक ही चाहिएं।"

"बस चुननी पड़ गई। और कोई चारा नहीं था।"

"क्यों?"

उसने कुछ संकोच से कहा, "मैं पढ़ रहा था। आर्थिक तंगी आई, तो यह नौकरी कर ली।"

"कोई ख़ास कोर्स कर रहे थे !"

"नहीं। इंटर साइंस में था। केमिस्ट्री में एम.एससी करना चाहता था। किसी फर्म में लग जाता, या कॉलेज में प्रोफेसर बन जाता। पर अब तो शायद यहीं सारी उम्र निकल जाएगी। वास्तव में, आदमी बड़े-बड़े सपने देखता है, पर वे पूरे नहीं हो सकते। कई बार रास्ते में कोई ऐसी दीवार आ जाती है कि वह जीवन भर एक ही जगह अटका रहता है। कई बार—"वह अचानक चुप हो गया।

मैं भी चुप खड़ा रहा। मैं समझ नहीं पा रहा था कि आगे क्या कहूं।

तब जैसे बात का रुख़ बदलने के लिए अवध नारायण ने बंटी की ओर देखा और मुस्करा कर कहा, "बड़ा होनहार बच्चा है। रास्ते में कोई दीवार न आ गई, तो बहुत आगे निकल जाएगा। भगवान करे, कोई दीवार न आए इसके रास्ते में।"

अचानक मेरी आंखें गीली हो गईं। साथ ही, मन में तल्ख़ी जागी। और मेरे मुंह से निकला, "दो दीवारें तो आपकी इस दूसरी कक्षा में ही हैं, जो इसके सामने खड़ी हैं।"

अवध नारायण ने हैरानी से मेरी ओर देखा, जैसे बात समझ न पाया हो।

"मेरा मतलब हिंदी और गणित के इन दोनों अध्यापकों से हैं," मैंने कहा। उन्हें देखकर मैंने सोचा था कि बच्चे को यहां दाख़िल नहीं करवाऊंगा, पर अब आपको देखकर सोचता हूं कि हो सकता है, बच्चा उड़ने वाले घोड़े पर बैठकर इन दीवारों को लांघ जाए और आसमान के चांद-तारे छू ले। हो सकता है, लोहे के घोड़े पर वह सारी दुनिया का सफ़र करे और बड़ा कुछ नया सीखे। .... सचमुच आपको मिलकर बहुत खुशी हुई।"

अवध नारायण कुछ बोल न सका और चुप किए खड़ा रहा।

आखिर, मैंने कहा, "अब मैं चलता हूं। आपसे कभी-कभी मुलाकात होती रहेगी।"

अवध नारायण ने दोनों हाथ जोड़ दिए। उस समय उसकी आंखों में मुझे भीगी हुई चमक दिखाई दी। वह हाथ जोड़े चुप ही रहा और 'नमस्ते' न कह सका।

क्या उजालों की अब तलाश करें,
घुप्प अंधेरों से डर गये हैं लोग,
चोटियों के लिए चले थे मगर,
घाटियों में उतर गये हैं लोग।

बलबीर सिंह राठी

एस आर हरनोट की पांच कविताएं

झूठ और सच

जहां झूठ
लोकतंत्र मान लिया जाता है
और
सकारात्मक विरोध
देशद्रोह
सच स्कूलों में
मास्टर जी के
पढ़ाने तक सीमित

राजनीति के किरदार
जहां बना दिए जाते हैं
ईश्वर और देवता
आदमी केवल
एक आधारकार्ड
गाय और गीता की पीठ पर
जहां लिए जा रहे हो
सत्य के प्रमाणपत्र

जहां बात केवल
तिरंगे की हो
देशभक्ति रहे सर्वोपरि
वहां पच्चास प्रतिशत
घटिया आपूर्ति किए
झंडे की जवाबदेही
कोई मायने नहीं रखती
न मायने यह रखता है कि
मंहगाई दिनों दिन
कितनी हो गई है..?

चुने हुए जनप्रतिनिधि
क्यों हो जाते हैं
पीज़ा और बर्गर
या किसी मंडी के उत्पाद
बोलियां लगाओ
और खरीद लो...?

राम
तुम क्यों पूजाघरों से
निकल आते हो बाहर
क्यों चले आते हो
चुनावी रैलियों और
अंध भीड़ में बार बार...?

तुम तो मर्यादा पुरुष हो
थोड़ी थोड़ी मर्यादाएं
फिर क्यों नहीं सीखा देते

इन राजनीति के
हिंसक पशुओं को
जो कुर्सी तक जाते तो हैं
आमजन की उंगलियों
और अंगूठे के निशानों पर
परंतु बैठते ही
बढ़ जाते हैं इनके नाखून
जो होते रहते हैं
नश्तर से भी कहीं पैने
अगले चुनाव तक
हे राम ! नाम तुम्हारा होता है
और शिकार बेचारा वही मासूम

हम जानते हैं
आज का युद्ध
किसी हिडिंब जरासंध
या किसी कंस रावण या
चंद मुंड से नहीं हैं
कचैहरियों में रखीं
गीता से है
जिस पर हाथ रख कर
प्रमाणित हो रहें हैं
सच में तमाम झूठ

सुनो कृष्ण ! तुम्हें भी जब तक
नहीं मिलती कोई सत्ता
इस मुल्क का, इस मुल्क की
गायों गोपियों का
थोड़ा मान ही रख लो
ताकि भविष्य की पीढ़ी के लिए
बचा रहे एक शब्द "सच"

और तुम्हारी जय जयकार
चुनाव रैलियों में नहीं
किसी अर्जुन के रथ पर
या किसी धर्मयुद्ध में ही हो
सुदर्शनचक्र के साथ
धर्म की रक्षा के लिए।

ज़ेबें

पुल पार करते हुए
एक नदी
अनायास छुप गई
मेरी जेब में
वह कर रही होगी
सुरक्षित महसूस अपने को
इस आततायी दुनिया से
पर उसे नहीं मालूम
आदमी और जेब का रिश्ता
आज कितना गहरा और
खतरनाक हो गया है

तमाम मजहब
जातियां और रिश्ते
मिल जाएंगे उनकी जेबों में
जिन्हें वे समय असमय
करते रहते हैं इस्तेमाल
अपने पक्ष में

उन्होंने कैद कर दिए हैं
जेबों में
जल जंगल और जमीन
यहां तक कि

पृथ्वी भी
अब वे तेजी से बढ़ने लगे हैं
चांद की तरफ

आप कभी उनकी ज़ेबें
टटोल कर देखना
उसमें मिल जाएगी आपको
एक पृथ्वी, एक नदी, एक चांद
और
मुट्ठी भर तितलियां.

यहां तक कि
उनके बीच ठूंस रखा होगा
लोकतंत्र और
देश का संविधान

जेबें सचमुच खतरनाक
हो गई हैं
दर्जी जो कभी
बड़े इत्मीनान से
सिला करता था उन्हें
आज खुद कैद पाता है
इन्हीं जेबों में

जाल

कई बार हारना भी
जीत से ज्यादा
विश्वास दे जाता है
खुशी दे जाता है
अपने विश्वास
जिंदा रखने के लिए
कई बार
इस झूठे समय में
आपको महसूस नहीं होता
कि आपकी आंखों में
जो धूल पड़ रही है
वह हवा से है
या किन्ही
प्रायोजित तकनीकी कणों से
हो सकता है
यह तीव्रगति से
किसी आक्रमण का
पूर्वाभ्यास हो

इसलिये
जो जाल दिखते नहीं
उनमें फंसते जाना
आसान होता है
सतर्कता जरूरी है
क्योंकि शिकारी
बहुत सक्रिय हैं
साजिशों के जंगल में
उसने हल्की सी
दिशा बदली है
आक्रमण का
स्वभाव नहीं

डर

मैं बहुत सी चीजों से
डरने लगा हूं

मुझे डर लगता है
एम्बुलेंस और उसमें सोई
बीमार स्त्री से

कोई 90 वर्ष का बुजुर्ग
जो कई महीनों से
पड़ा हो अपनी खटिया पर
मै उससे बहुत घबराने लगा हूं

पता नहीं क्यों
मै अब मुर्दों से डरने लगा हूं

सड़कों पर हक के लिए
आवाजें लगाते बच्चे
बहुत डराते हैं मुझे

प्रश्नों से बहुत भयभीत हूं मैं
आखिर जनता
कैसे पूछ सकती है प्रश्न
अपने जीते हुए नुमाइंदों से
उसका काम वोट देना और
चुप रहना है

सचमुच अब कविताओं से
बहुत डर लगता है
शब्द सीधे नींव के पथरों को
हिलाने लगे हैं.

मै तय नहीं कर पाता हूँ
कौन से या किस रंग के
कपड़े टोपी पहनूं

मुझे कपड़ों और रंगों से
बहुत डर लगने लगा है

मैं घर में रखी किताबों से
भयभीत हूं
न जाने अल्मारियों से वे
कब बाहर निकल जाए
और भिड़ने पूछने लगे
आपस में ही
पूछते पूछते
मेरा मजहब

मुझे अब अपने आप से
डर लगने लगा है
मुझे नहीं पता
में कौन हूं और इस
डर समय में
मेरा वजूद क्या है ..?

आरक्षण

हम खत्म
करना चाहते हैं आरक्षण
देश को
बना देना चाहते हैं
आरक्षण मुक्त
जैसे रोज रोज
सुनाई देती हैं आवाजें
कांग्रेस मुक्त भारत की
अच्छे दिनों की
और

भ्रष्टाचार मुक्त
व्यवस्था की

हम नहीं करना चाहते बात
जातिगत असमानता की
छुआछूत की कोढ़ की

हमारे मंदिर
या रसोइयां
हो जाती हैं अपवित्र
जिस देश में
एक आदमी के
छूने भर से
ऐसे लोग
यदि बात करें
आरक्षणमुक्त भारत की
सचमुच उनकी सोच पर
हंसा ही जा सकता है

क्योंकि जाति
वोट के लिए
जरूरी है
उच्चता के लिए
जरूरी है
जरूरी है अपनी
सवर्ण सोच की
दबंगता के लिए भी

दलित

दीपक वोहरा

वो हिंदू थे न मुसलमान
वो थे मेहनतकश इंसान
वो कहीं बाहर से नहीं आए थे
वो मूलनिवासी थे
वो आदिवासी थे

वो जुलाहा थे बंजारा थे
वो भंगी थे तेली थे
वो धोबी थे कुर्मी थे
वो कोरी थे खटीक थे
वो लुहार थे सुनार थे
वो चर्मकार थे महार थे
वो मल्लाह थे कुम्हार थे

ब्राह्मण कहते थे:
वे शूद्र थे, वो अछूत थे
वो म्लेच्छ थे वो राक्षस थे

हाँ वो शूद्र थे अछूत थे
लेकिन भोलेभाले इंसान थे
चालाकी और धोखे से अनजान थे

जब मनु ने कहा वो ब्रह्मा के पैरों से जन्में
उन्होंने पलटकर नहीं कहा
ब्रह्मा कहां से जन्मा

उनकी अपनी कहानियाँ थीं

शासक से शूद्र बनने की
अतिशूद्र बनने की
अछूत बनने की

वो नगर औ' गांव से दूर थे
जंगलों में रहने को मजबूर थे

हिंदुओं को डर था
उनकी परछाई से भी
वो नगर में आते थे
गले में मटके टांगे
पीछे झाड़ू बांधे
ढोल बजाते हुए
जब सूरज ठीक
सिर पर हो
परछाई लंबी न हो

वो इतने पीटे गए
इतने डराए धमकाए गए
कि वो कभी सिर न उठाए
वो शूद्र थे
अतिशूद्र थे
वो अछूत थे
वो हिंदू थे न मुसलमान
वो यहीं के मूल निवासी थे

वो जानवरों की खाल उतारते थे
चमड़ा तैयार करते थे
वो भंगी थे
वो विद्रोही थे
वो बुनकर थे
वो कपड़ा तैयार करते थे
वो कपड़े सिलते थे
वो लोहे को पिघलाते थे
वो चट्टानों को तोड़ते थे
वो मेहनत करते थे
उनके जिस्म फ़ौलादी थे
वो इरादों में इस्पाती थे

वो संगतराश थे
वो संगीतकार थे
वो दस्तकार थे
वो थे तो हिंदुस्तान था

वो न होते तो
हिंदुस्तान हिंदुस्तान न होता
संविधान न होता
बड़े बड़े महल न होते
ताजमहल लालकिला न होते

वो हिंदू थे न मुसलमान
वो थे मेहनतकश इंसान

सिख राज की पहली राजधानी साढ़ौरा और बाबा बंदा सिंह बहादुर

✍गगनदीप सिंह

अगर आप साढ़ौरा के पास किसी गांव में रहते हो तो अपने बाबा दादा से अकसर कहानी सुनी ही होगी कि यहां पर एक ऐसी मस्जिद है जिसको जिनों ने बनाया था। कहते हैं कि एक ही रात में वह मस्जिद तैयार कर दी गयी थी। और आज भी उसका एक पत्थर ऐसे ही लटका हुआ है। जब आप साढोरा जाएंगे तो छोटी ईंटों के पुराने घर देखकर बहुत हैरान होंगे। लगेगा कि यह शहर शायद बहुत पुराना है। यहां पर कई मस्जिद हैं, कई मंदिर हैं और कई गुरुद्वारे भी हैं। यह एक ऐसा कस्बा है जिसमें हिंदू, मुसलमान और सिख तीनों धर्मों के लोग बहुत लंबे समय से साथ-साथ रहते आ रहे हैं। इस शहर में एक बहुत प्रसिद्ध गली है जिसको कत्लगली या खूनी गली के नाम से जाना जाता है। शहर में बहुत पुराना एक इमली का पेड़, खारा कुआं भी है। एक बहुत पुराना गुरुद्वारा है

जिसका निशान साहिब लकड़ी का है। कहा जाता है इसको बाबा बांदा सिंह बहादुर ने खुद स्थापित किया था। छोटी-छोटी ईंटों के पुराने घर, हवेली देखकर मन में जिज्ञासा हुई आज इतना छोटा सा दिखने वाला साढ़ौरे का इतिहास क्या रहा होगा? और ये घर, हवेली किस के होते होंगे जो आज तक कायम है। हालांकि बहुत सारी इमारतों को तोड़ कर नया बनाया जा चुका है, और उनके निशान ही बचे हैं। फिर भी शहर के बीचों बीच अब भी बहुत सारे घर पुराने बचे हुए हैं।

अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए मैं कई सिख, हिंदू और मुसलमान बुजुर्गों से मिला। कुछ किताबें मिली। साथ पढ़ने वाले कुछ शोधार्थियों से बातचीत की। हालांकि साढ़ौरा का इतिहास लिखने के लिए बहुत सामग्री है। लेकिन आज हम केवल इस बाबा बंदा सिंह बहादुर के बारे में बात करेंगे।

बन्दा सिंह बहादुर ने मात्रा 25 व्यक्तियों से आन्दोलन शुरू कर भारत के शक्तिशाली मुगल राज्य को हरियाणा पंजाब के एक हिस्से से उखाड़ फैंका और जनता के राज के रूप में खालसा राज कायम किया। हरियाणा के सढ़ौरा को राजधानी बनाकर इस राज को पानीपत से लेकर जालंधर तक फैला दिया जिसके तहत अनेक बड़े-बड़े शहर, कस्बे और हजारों गांव आते थे। इस आन्दोलन ने मात्र दस साल में मुगल की राज्य मशीनरी, व अधिकारियों को हटा कर नए राज्य का निर्माण करना इस आन्दोलन की खासियत थी। शक्तिशाली मुगलराज्य की राजधानी से मात्र 100 कि.मी. की दूरी पर विद्रोहियों के नए स्वतन्त्र राज्य का निर्माण मुगल शासकों की सत्ता के लिए एक बडी चुनौती थी। मुगल शासकों ने बादशाह के नेतृत्व में शाही फौजों ने इस राज्य पर हमला कर दिया तथा बन्दा बहादुर को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के आदेश जारी किया। एक तरफ नवनिर्मित राज्य और दूसरी तरफ हिन्दुस्तान के दो तिहाई हिस्से पर राज करने वाला मुगल बादशाह। यह आन्दोलन की तीव्रता और आवेग की तरफ इशारा तो करती है साथ ही नए राज्य के सपना बुनने वालों के समक्ष आने वाली कठिनाईयों और दुर्गमता का बखान भी करती है। बन्दा सिंह बहादुर और उसके लड़ाके इन कठिनाईयों को पार करने का साहस रखते थे। राज्य खोने के बावजूद वे लड़ते रहे। हरियाण पंजाब से सटे जंगली इलाके उनके रक्षा कवच का काम करते रहे और हार जीत के उतार चढ़ाव में अन्ततः बन्दा बहादुर मुगल फौजों की गिरफ्त में आ गया। मुगल शासकों ने उसे तड़पा-तड़पा कर मार ड़ाला। परन्तु बन्दा बहादुर अन्त तक अपने अपने उद्देश्य पर अड़िग रहा और इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए उसने अपनी जान की बाजी भी लगा दी। 1707 से 1716 तक चले इस आन्दोलन ने मुगल राज्य को नाकों चने चबवा दिए।

बाबा बंदा सिंह बहादुर ने साढ़ौरा को सिख राज की पहली राजधानी घोषित किया था और यहां से अपना राजकाज चलाया था। लेकिन यहां पहुंचने से पहले उसने सोनीपत, जींद, कैथल, समाणा, मुस्तफाबाद पर हमले किये। वहां से खजाना, घोड़े आदि लूटे और अपनी बड़ी सेना खड़ी कर ली थी। लोगों ने उनका दिल खोल कर साथ दिया और सेना में भर्ती हुए क्योंकि उसने बड़े-बड़े जमींदारों की जमीनों को छीन कर आम लोगों में बांट दिया था। आम दबे कुचले दलित-दमित लोगों को उसने जीते हुए इलाकों का मुखिया घोषित किया था। साढ़ौरा पर कब्जा करने से पहले और बाद तक यहां पर कई घमासान युद्ध हुए थे।

मुस्तफाबाद पर कब्जा करने के बाद बन्दा सिंह सढ़ौरा की ओर बढ़ चला। गुरू गोबिंद सिंह ने वहीं पर गढ़ बनाकर सैन्य हमले संचालित करने के लिए बन्दा बहादुर को कहा था। सढ़ौरा शिवालिक की पहाड़ियों की तलहटी में बसा हुआ शहर है। शहर के एक तरफ यमुना बहती है और दो तरफ पहाड़ियां हैं। तीन तरफ से घिरे इस इलाके में आधार कायम कर व्यापक इलाके में सैन्य हमले संचालित किए जा सकते थे। इसीलिए सैन्य रणनीति में माहिर गुरू गोबिंद सिंह और बन्दा सिंह बहादुर इस इलाके को बहुत महत्व देते थे। इस इलाके की ओर बढ़ते हुए बन्दा सिंह बहादुर को सूचना मिली कि इस इलाके के लोग कपूरी के शासक कुदम-उद्-दीन के जुल्मों का शिकार हैं।

कपूरी का शासक औरतों पर गलत निगाह रखता था। शायद ही ऐसी कोई खूबसूरत महिला थी जिस पर उसने हाथ न डाला हो। पूरे इलाके में उसकी दहशत थी। वह किसी भी शादी से दुल्हन उठा कर ले जाता था। यह सुनकर बन्दा सिंह बहादुर कपूरी के शासक पर हमला करने के लिए निकल पड़ा। रास्ते में दालौर नाम के गांव में रूककर उसने लबाना व्यापारियों से स्थानीय जानकारी हासिल की और सुबह होते ही कपूरी पर हमला कर उसे तहस-नहस कर दिया। कुदम-उद-दीन की सारी सम्पत्ति मे आग लगा दी। सुबह कुदम-उद-दीन का अता पता नहीं लगा। शायद वह आग में जलकर भस्म हो गया था।

स्थानीय शासकों ने गुरू गोबिंद सिंह का साथ देने वाले पीर बुद्धूशाह को भी मार डाला। पीर सैयद बुदर-उद-दीन शाह, जिन्हे पीर बुद्धूशाह भी कहते हैं, ने भंगाणी की लड़ाई में पुत्रों और सैनिकों सहित शामिल होकर गुरू का साथ दिया था तथा वहां के धनी सैयद और पठानों ने भी गुरू की मदद की थी। शहरी हिन्दू सढ़ौरा से पलायन कर रहे थे। आम लोग बन्दा सिंह बहादुर के पास अपनी समस्याओं का समाधान कराने के लिए आने लगे थे। बन्दा ने शिकायत मिलते ही सढौरा की तरफ कूच कर दिया। इस हमले में आसपास के इलाके के आक्रोशित किसान और अन्य समुदाय भी शामिल हो गए जो जालिम नवाब से बदला लेना चाहते थे। वहां का नवाब शेख था।

बंदा सिंह के हमले की खबर सुनते ही नवाब ने किलेबंदी मजबूत कर ली और आसपास के इलाके के मित्रों को भी लड़ने के लिए बुलावा भेजा। सिक्खों ने आठ घंटे तक नवाब की सेना का मुकाबला किया। बन्दा सिंह कुछ समय तक लड़ाई को चुपचाप देखता रहा। मुकाबला बराबरी का था। सिक्ख जत्थेदार फतेह सिंह और भगतु सिंह ने बन्दा सिंह से गुजारिश की कि अगर मुकाबला कुछ समय ओर जारी रहा तो दुश्मन का पलड़ा भारी हो जाएगा। उनकी गुजारिश पर बन्दा सिंह जंग में कूद गया। जंग में उसके आते ही सिक्ख और अन्य लड़ाकों में जोश भर गया। बन्दा सिंह बहादुर ने आखिरी हमले का आदेश दिया। यह हमला दुश्मनों के लिए असह्य था। सढ़ौरा के नवाब उस्तान खान को एक पेड़ से बांध दिया गया और उसी हालत में उसकी मौत हो गई। बन्दा ने शहर व किले पर सिक्खों के कब्जे की घोषणा कर दी।

सख्त सजा से डरे हुए गणमान्य मुस्लिम बन्दा के पैरों में गिर पड़े और माफी की गुहार लगाने लगे। बन्दा ने उन्हें माफ कर दिया। परन्तु यह माफी मौजिज मुस्लिमों की एक चाल थी। उन्होंने एक आदमी को वजीर खान के पास पत्र देकर भेज दिया था ताकि वो फौज लेकर वहां धावा बोल दे। यह पत्र एक बांस में डाला गया था। एक ऊंट वाहक ने जानवर भगाने के लिए यह बांस उस आदमी से मांग लिया। जानवर खदेड़ने के क्रम में यह पत्र बांस में से निकल गया और माफी मांगने वालों की चालाकी उजागर हो गई। बन्दा बहादुर ने पत्र मिलने के बाद पंज प्यारों को दिखाया। पंज प्यारों ने उन मुसलमानों को बुलाकर पूछा कि अपने ही शुभचिंतक को धोखा देने की सजा क्या होनी चाहिए? मौजिज मुसलमानों ने कहा कि ऐसे गलत आदमी को बगैर दया दिखाए प्रताड़ित करके मार देना चाहिए। बन्दा बहादुर ने सभी मौजिज मुसलमानों को कत्ल करने का आदेश दिया। सिक्खों और लड़ाकों ने मौजिज मुस्लमानों को चुन-चुन कर मारा। सिक्खों और अन्य लड़ाकों ने शहर को लूट लिया। पीर बुद्धूशाह की इमारत को छोड़कर सभी मकानों पर हमला किया गया। ये लड़ाके सदियों से काजी, सैयद और शेख जैसी सामन्ती ताकतों के शोषण का शिकार थे। उन्होंने

कम-से-कम 50 अमीरजादों को दिल दहलाने वाली सजा दी। उन्होंने शोषण की नींव पर बनी हवेली के सभी नुमाईंदों को मौत के घाट उतार दिया। आज भी इस जगह को कत्लगढ़ी कहते हैं।

यह जनविद्रोह था। जिस तरह फ्रांस की क्रान्ति में जनता ने सामन्तों और उनके कारकुनों का सिर इसी तरह कलम कर दिया था। सढ़ौरा के नवाबों को भी इसी तरह की सजा जनता ने दी। उन्होंने शोषण और उत्पीड़न की व्यवस्था को उखाड़ फैंकने के इरादे से शोषकों और अत्याचारियों को मौत के घाट उतार दिया।

सढ़ौरा की लड़ाई इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इस लड़ाई में हजारों सालों से उत्पीड़ित जनता लहरों की तरह उमड़ पड़ी और जुल्मी शासकों को नेस्तनाबूद कर दिया। उन्होंने खुद को बन्दा के नेतृत्व में चल रही उस लडाई का हिस्सा बना लिया जो जनता को सामन्ती उत्पीड़न से मुक्ति दिलाना चाहती थी।

साढौरा को राजधानी बनाना

प्रशासनिक व्यवस्था कायम करने के बाद बन्दा ने सढ़ौरा के निकट मुख्लिसपुर के किले को अपनी राजधानी बनाया। इस किले का निर्माण मुख्लिस खान ने शाहजहां के निर्देशानुसार किया था। पहाड़ियों की तलहटी में स्थित इस किले को राजधानी बनाया जाना बन्दा की परिपक्व समझ का परिचायक था। अगर सरहिन्द को राजधानी बनाया जाता तो निश्चित तौर पर मुगल सरहिन्द पर तुरन्त कब्जा कर लेते और सिक्खों को भारी नुक्सान पहुंचाते क्योंकि सरहिन्द मैदानी इलाके में शेरशाह सूरी मार्ग पर बसा शहर था जहां मुगल की बड़ी फौज तुरन्त पहुंच कर कब्जा करने में सक्षम थी। बन्दा जानता था कि मुगल उस पर तेज हमला करेंगे।

मुगल शासकों की युद्ध क्षमता के मुकाबले बन्दा की सेना के हथियार अभी भी तुच्छ थे। सिक्खों की नियमित सेना का संख्यात्मक बल भी मुगल शासकों के मुकाबले बहुत कम था।

अत्यन्त ताकतवर दुश्मन को हराने का सबसे अच्छा तरीका छापामार युद्ध ही हो सकता था और इसी तरीके को बन्दा ने अपनाया भी। उसने मुगल शासकों का मुकाबला करने के लिए सरहिन्द की बजाए पहाड़ों के मध्य में स्थित सढ़ौरा को अपने आधार इलाके के रूप में चुना और मुख्लिसपुर किले से वह लड़ाई का संचालन करने लगा। उसने सरहिन्द के खजाने को मुख्लिसपुर के किले में जमा किया। बन्दा ने मुख्लिसपुर के किले में प्रथम खालसा राज की औपचारिक स्थापना की। और खालसा राज का पहला सिक्का जारी किया। सिक्के को दोनों तरफ से गढ़ा गया।

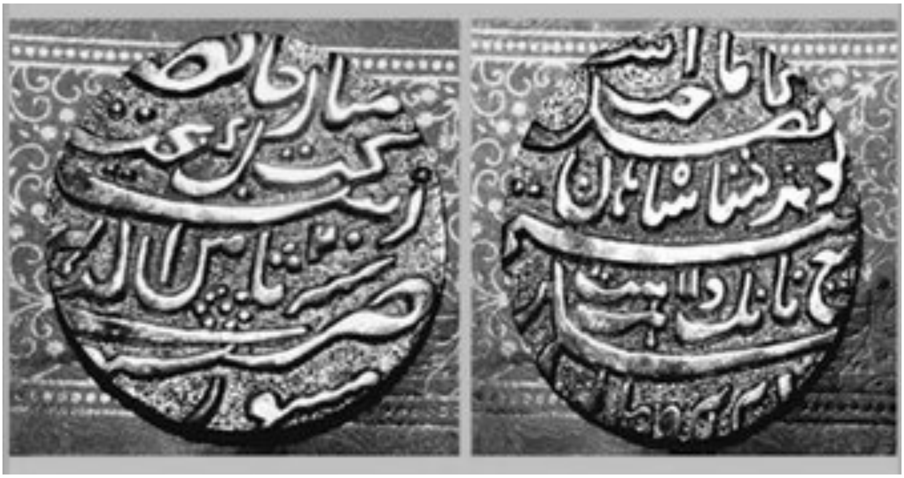

फारसी में गोदे गए इस सिक्के के एक तरफ लिखा था -

सिक्का ज़द बर ह दो आलम तेग नानक साहिब असत। फतेह गोबिंद सिंह शाह-शाहान फजलि सच्चा साहिब असत –

(सच्चे पादशाह के कृपा से दो संसारों में गोदा गया सिक्का/पादशाह के पादशाह गोबिंद सिंह की फतेह, नानक की तलवार इच्छाओं की पुरा करती है।)

दूसरी तरफ था-

जरब ब अमा दहर, मुसव्वरत शहर , जीनतु-तखतु, मुबारक बखत -

(आदर्श शहर में गोदा गया, संसार की शरणस्थली, भाग्यशाली तख्तो-ताज का गहना।)

उसने राज मोहर बनवाई जो आधिकारिक हुक्मनामों या फरमान पर लगाई जाती थी।

मोहर पर छपा था-

देग (कटोरा-गरीबों के भोजन करने के बर्तन का प्रतीक) तेग (तलवार-गरीबों और निरीह की रक्षा करने वाली ताकत का प्रतीक) नानक-गुरू गोबिन्द सिंह से असीम कृपा और फतेह मिली है। नया सम्वत भी आरम्भ किया गया जोकि सरहिन्द की विजय की तारीख से शुरू होता था।

नई सत्ता स्थापना के लिए आवश्यक कार्रवाई पूरी कर बन्दा सिंह बहादुर ने ऐसे राज की स्थापना कर दी जहां मुगल शासकों के फरमान की बजाए नए खालसा राज का फरमान

चलने लगा जोकि गुरु नानक और गुरु गोबिन्द सिंह के नाम से चलाया जा रहा था न कि किसी राजा के नाम से। खालसा राज में किसी को राजा नहीं बनाया गया।

खालसा राज कायम करने के बाद बन्दा ने एक ऐसा काम किया जो भारतीय उपमहाद्वीप में पहले कहीं नहीं हुआ था। इस तरह का विचार तक नहीं उपजा था। यह था- जमींदारी प्रथा का पूर्णतया खात्मा।

बन्दा के नेतृत्व में स्थापित राज में जनता का जमीदारों के खिलाफ लामबंद करने के सचेतन प्रयास किए गए। एक बार सढौरा के नजदीकी गांव के लोग बन्दा के पास शिकायत लेकर आए कि इलाके का जमींदार उन पर बेतहाशा जुल्म कर रहा है। लोगों की बात सुनने के बाद बंदा सिंह बहादुर ने सिक्ख सरदारों आदेश दिया कि उन लोगों को गोली से उड़ा दिया जाए। यह आदेश सुनकर लोग घबरा गए और बन्दा से इस अदभुत व्यवहार का कारण पूछा। बन्दा ने जवाब में कहा - 'तुम इससे ज्यादा अच्छे व्यवहार के काबिल नहीं हो। तुम हजारों की संख्या में हो और तुम फिर भी जमींदार से खुद का बचाव नहीं कर सकते। खालसा अपने साथ किए गलत का बदला खुद लेता है।' इस तरह बन्दा लोगों को जमींदारी प्रथा को खत्म करने के लिए तैयार करता था।

मनु के नियमों के अनुसार संचालित जाति प्रथा ने इन जातियों को 2000 साल तक सम्पत्ति से वंचित रखा था। हरियाणा में उन्हें कमीन (कमीन का अर्थ है काम करने वाला यानी मेहनतकश) कहकर उसे इतना प्रताड़ित किया गया कि वे अपने उत्पीड़न को शाश्वत समझ बैठे थे। परन्तु गुरू गोबिन्द सिंह की सीख से लैस बन्दा सिंह बहादुर ने इन जातियों के लोगों को मुक्ति की राह दिखाई और मुगल शासकों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष कर उन्हें सत्ता के सिंहासन तक पहुंचा दिया। इन जातियों के लोगों को परगनों में अधिकारी नियुक्त किया गया।

बन्दा ने साफ तौर पर ऐलान किया- 'हम मुसलमानों की मुखालफत नही करते और न ही हम इस्लाम का विरोध करते हैं। हम सिर्फ जुल्मों-गारत के खिलाफ हैं और गलत तरीके से हथियाई गई राजनैतिक ताकत के ही खिलाफ हैं। यह राजनैतिक सत्ता जनता की है न कि किसी विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति की या मुगल शासकों की।'

सढ़ौरा को आधार बनाकर खोला गया नया मोर्चा सैन्य रणकौशल के लिहाज़ से उचित कदम जान पड़ता है। जमुना पार के इलाके में जनता के हालात बहुत दयनीय थे। वहां के लोग शासकों के भारी दबाव में में गुजर बसर करने पर मजबूर थे। उस इलाके में कार्यरत सिक्ख प्रचारक कपूर सिंह से जनता के इन हालातों की जानकारी सुनकर बन्दा ने सहारनपुर पर चढ़ाई कर दी और मुगल प्रशासकों को वहां से खदेड़ दिया। वहां का फौजदार अली हमीद खान अभिजात वर्ग और अफगानों के साथ दिल्ली भाग गया। शेष शाही

अधिकारियों ने तीरों और गोलियों के सहारे सिक्ख सेना का मुकाबला करने की कोशिश की। परन्तु वे सिक्कों का मुकाबला नहीं कर सके।

साढ़ौरा को आधार बनाकर बंदा सिंह बहादुर ने सहारनपुर, बेहट और जलालाबाद के शासकों को हराकर मुगल शासन की नींद हराम कर दी।

मुगल बादशाह बहादुर शाह को 30 मई 1710 को बन्दा बहादुर के नेतृत्व में सिक्ख विद्रोह की जानकारी मिली। उस समय बहादुर शाह अजमेर में राजपूत राजाओं के साथ जंग लड़ रहा था जोकि बादशाह के खिलाफ विद्रोह की तैयारी कर रहे थे।

हमले में बादशाह का सहयोगी कुंवर खान लिखता है कि 'ऐसा समझा गया कि राजधानी के इतने नजदीक बादशाहत के खिलाफ लोकप्रिय विद्रोह होना राजपूतों से हिसाब किताब बराबर करने की अपेक्षा अधिक खतरनाक है और उसके परिणाम भी दूरगामी होंगे।' उसने उसी समय सढौरा की ओर कूच का फरमान जारी कर दिया। बादशाह के नेतृत्व में शाही शिविर और फौजें सढौरा की ओर बढ़ चली। तथा बादशाह 27 जून 1710 को सढौरा की ओर बढ़ चला।

इस बीच फिरोज खान मेवाती के नेतृत्व में एक टुकड़ी को अग्रिम मोर्चे पर भेजा गया था। उसे आदेश दिया गया था कि 'दुश्मन द्वारा स्थापित थानों को नष्ट कर दिया जाए, शाही चौकियां स्थापित की जाएं और शाहबाद, मुस्तफाबाद, सढ़ौरा और अन्य पुराने ठिकानों के लुटे हुए लोगों को दोबारा वहां भेजा जाए।' उसे 50 हजार रूपये शाहबंदी के लिए दिया गया था। 26 अक्तूबर को तरावड़ी के पास अमीनगढ़ में उसका सामना सिक्खों से हुआ। वहां छिछरा झाड़ियों के पीछे छिपकर सिक्खों ने मुगल सेना पर हमला किया। तथा मुगल सेना को नाकों चने चबवा दिए। यहां फिरोज खान का साथ देने सैयद आ गए, जिससे उसकी ताकत में इजाफा हो गया। सिक्ख इस ताकत का मुकाबला न कर सके। उनके अनेक साथी जंग में खेत रहे। कलम कर दिए गए 500 सिक्खों के सिर छकड़े मे डालकर बादशाह की खिदमत में भेजा गया। इसकी ऐवज में बादशाह ने फिरोज खान मेवाती को सरहिन्द की फौजदारी और एक लाख रूपया बतौर इनाम दिया। अमीनगढ़ की लड़ाई जीतने के बाद फिरोज मेवाती थानेसर की ओर बढ़ा। इस दौरान सिक्खों की सेना छोटी-छोटी टुकड़ियों में बंटी हुई थी। थानेसर में सिक्खों ने हल्की लड़ाई ही लड़ी। मैदानी इलाके में उनका मुकाबला करने की बजाए सिक्ख पहाड़ों में स्थित सढौरा की ओर चले गए। फिरोज खान मेवाती उनका पीछा करता हुआ थानेसर से शाहबाद की ओर गया। बादशाह सिक्खों से लड़ने के लिए 60 हजार घुड़सवार की फौज तैयार रखना चाहता था जो जरूरत के अनुसार तुरन्त कार्रवाई कर सके। उसने चिन बहादुर के नेतृत्व में एक दल को सरहिन्द पर हमला करने के लिए भेजा। वहां के किले में सिक्खों के एकत्र होने की खबर उसे मिली थी। सरहिन्द में भी

सिक्खों पर शम्स खान, बजायद खान और उमर खान ने बड़ी भारी फौज लेकर हमला बोल दिया था। उस समय सिक्खों द्वारा नियुक्त सरहिन्द का सूबेदार बाज सिंह वहां नहीं था। फिर भी सिक्खों ने शाही सेना का डटकर मुकाबला किया। परन्तु कम संख्या में होने के कारण और मैदानी लड़ाई होने के कारण वे आमने-सामने की लड़ाई लम्बे समय तक नहीं टिक सकते थे। इसलिए वे सरहिन्द के किले में लड़ते रहे। अंततः सरहिन्द उनके हाथ से निकल गया। इस लड़ाई में तीन सौ से अधिक सिक्ख शहीद हो गए।

बादशाह खुद सढ़ौरा की ओर रवाना हुआ। वह 4 दिसम्बर 1710 को सढ़ौरा के पास पहुंच गया। वहां उसने शाही शिविर लगाया। बादशाह सिक्ख नेतृत्व में जारी जनविद्रोह को किसी भी कीमत पर कुचलना चाहता था। इसलिए उसने अपने सभी आला अधिकारियों को सबसे अगली पांत में रखा। अग्रिम दल का रूस्तमदिल खान शाही शिविर से मात्र दो कोस ही आगे बढा था कि सिक्खों ने उस पर हमला शुरू कर दिया। इस हमले में सिक्खों ने तीरों, गोलियों की बौछार कर दी। इस लड़ाई मे फिरोज खान मेवाती का भतीजा मारा गया। शाम होने पर सिक्ख पूर्व में स्थित अपने लोहगढ़ के किले की ओर वापिस हट गए। शाही सेना के अग्रिम दल ने ढेड़ कोस आगे अपना शिविर लगा दिया। रूस्तम दिल खान को सिक्खों का डटकर मुकाबला करने के ऐवज में इनाम दिया गया। उसका ओहदा बढ़ा कर '4000 जात और 3000 घुड़सवार' कर दिया गया तथा उसके बेटे का शाही रसोई में दावत देकर सम्मान से नवाजा गया। 58 अगले दिन 60 हजार शाही सैनिकों ने लोहगढ़ के किले की घेराबंदी कर दी। इतनी बडी सेना के साथ किले की घेराबंदी करने के बावजूद बहादुरशाह ने उस पर हमले नहीं किया क्योंकि लोहगढ़ का किला तक पहुंचना आसान काम नहीं था। उसने अपने सिपहसलारों को धीरे-धीरे आगे बढ़ने को कहा और जल्दबाजी में कोई कदम न उठाने के बारे में आगाह किया। इसी बीच शाही सेना के सिपहसलारों में आपस में फूट साफ नजर आई। वजीर मुईन खान ने तो बादशाह के आदेश की परवाह किए बगैर अपनी टुकड़ी को सिक्खों से लड़ने के लिए आगे भेज दिया। जिस पर बादशाह बहुत गुस्सा भी हुआ। सिक्खों ने इसका डटकर मुकाबला किया और बाद में शाही शिविर पर हमला कर दिया। इस हमले में उन्होनें तोप का गोला भी दागा। इस हमले के बाद शाही सेना की टुकडियों ने सिक्खों की खंदकों पर धावा बोल दिया। शक्ति बल और हथियारों के मामलें में शाही सेना के मुकाबले कमतर होने के कारण सिक्खों के लिए आमने-सामने की लड़ाई आत्मघाती होती। इसलिए वे लोहगढ़ के किलेबंदी में रहकर लड़ने लगे। लड़ाई तीखी हो गई।

लड़ाई के प्रत्यक्षदर्शी कंवर खान के मुताबिक यह लड़ाई दिल को दहला देने वाली थी। इस बीच रूस्तमदिल खान उस पहाड़ी की तलहटी में पहुंच गया जिस पर लौहगढ़ का

किला बनाया गया था। बन्दा सिंह बहादुर किसी दूसरी पहाड़ी पर बैठकर लड़ाई का सारा दृश्य देख रहा था। अगले दिन सिक्खों ने मुगल शासकों की पांत भेदने के लिए हमले किए ताकि घेराबंदी को तोड़ा जा सके। इस हमले में भारी संख्या में मुगल सेना का सफाया कर दिया। शाम की नमाज के समय मुईन खान रूस्तम दिल खान को अकेला छोड़कर वापिस शाही शिविर में लौट गया। बादशाह ने उस पर रोष जताया। तो उसने बादशाह को दिलासा दिया कि बन्दा बहादुर को घेर लिया गया है और वह सुबह तक बादशाह की कैद में होगा। इस बीच जुल्फकार के हरकारे ने जानबूझ कर यह अफवाह फैला दी की सिक्खों का नेता कैद कर लिया गया है जिसे वजीर ने बादशाह को सुना दिया। परन्तु बन्दा तो मुगल शासकों की पकड़ से बाहर था।

लौहगढ़ के किले में रसद और अनाज खत्म हो चला था। इसी समय मुगल शिविर को अनाज आपूर्ति करने वाले खत्री व्यापारी ने सिक्खों की मदद की। सिक्खों ने किले की दिवार के ऊपर से रस्सी फैंकी और व्यापारियों ने उनमें अनाज बांध दिया। सिक्ख रस्सी ने ऊपर खींच ली और अनाज किले में रख लिया। जंग के ऐसे दौर में व्यापारियों द्वारा सिक्ख लड़ाकुओं को मदद देना उनकी सिक्ख के नेतृत्व में चलने वाली लड़ाई के प्रति हमदर्दी को जाहिर करता है। ऐसा माना जाता है कि दीवान हरदयाल ने सिक्खों की तब तक मदद की जब तक वह ऐसा करने का मौका मिलता रहा। सिक्ख मुगल सेना की घेराबंदी को तोड़ने की पुरजोर कोशिश कर रहे थे। इसी दौरान बन्दा बहादुर व अन्य सिक्खों को सुरक्षित बाहर निकलने का मौका देने के लिए गुलाब सिंह नामक खत्री सिक्ख ने बन्दा बहादुर होने का स्वांग भर लिया। वह बन्दा बहादुर जैसी पोशाक पहन कर किले में उसकी गद्दी पर बैठ गया। इस बीच बन्दा बहादुर और उसके अन्य साथी तलवार लेकर मुगल शासकों से भिड़ गए और मुगल शासकों की घेराबंदी तोड़ते हुए नाहन की ओर बर्फी राजा के इलाके के पहाड़ों में लोप हो गए। ग्यारह दिसम्बर की भोर में मुईन खान के नेतृत्व में मुगल सेना ने किले पर कब्जा कर लिया। वे बन्दा बहादुर को पकड़े जाने की खुशियां मना रहे थे। तभी बादशाह की सेना लोहगढ़ में गड़े खजाने को निकालने के लिए कई दिन तक खुदाई में लगी रही। वहां से उन्हें आठ लाख रूपये और सोने की असर्फी मिली।

इसके बाद शाही शिविर को सढौरा से हटा बादशाह लाहौर की ओर चला गया और 15 फरवरी को वजीर मुईन खान की सदमे और बीमारी से मौत हो गई। 1712 को बादशाह की मौत हो गई और उसके बेटों के बीच तख्त हथियाने के लिए झगड़ा शुरू हो गया। अन्ततः जहांदार शाह को बादशाहत मिली और उसने 29 मार्च को तख्त सम्भालते ही कत्लेआम शुरू कर दिया। परन्तु 10 माह के भीतर ही फरूर्खशियर ने उसे बेदखल कर बादशाह बन गया। शाही तख्त के दावेदार आपसी झगड़े में उलझे हुए थे तो सिक्खों को

सढ़ौरा में पैर जमाने का मौका एक बार फिर मिल गया और बन्दा बहादुर ने समय गवाएं बगैर दोबारा सढ़ौरा पर कब्जा कर लिया। सढ़ौरा पर कब्जा करने के बाद लोहगढ़ के किले की मरम्मत की गई। अगले दो साल तक सढ़ौरा सिक्खों की राजधानी बना रहा। सत्ता की राजनैतिक अस्थिरता हमेशा जनता के रैडिकल आन्दोलनों के लिए सहायक होती है। रैडिकल आन्दोलन ऐसे समय में अपनी ताकत बढ़ाते हैं और खुद को सुदृढ़ करते हैं। बन्दा बहादुर ने भी इसे अपनी ताकत को समेटने और सुदृढ़ करने के लिए प्रयोग किया। उसने सढ़ौरा शहर के नजदीक एक बड़ा किला बनवाया। वहां से उसने शाही सैनिकों का कड़ा मुकाबला किया। सिक्ख सैनिक सोते-जागते, खाना बनाते और खाते वक्त भी लड़ाई जारी रखते थे। सिक्खों के खिलाफ लड़ रहे सरहिन्द के फौजदार ने इस किले पर तोप के गोले दागे। इन गोलों का किले पर कोई असर नहीं हुआ। फौजदार ने किले के चालीस पचास गज दूरी पर खन्दक खोद ली और वहां से एक भारी भरकम बन्दूक से सिक्खों पर गोलाबारी शुरू कर दी। सिक्खों ने कोई शोरशराबा किए बगैर इस बन्दूक को वहां से हटाने का फैसला किया।

सिक्खों ने किले से एक सुरंग खोद डाली जो किले के बाहर खुलती थी। तोप के बिल्कुल उलट दिशा में इसका मुहाना बनाया गया था। बरसात का मौसम था। एक दिन रात को मुसलाधर बारिश हो रही थी और कोई भी अपने तम्बुओं से बाहर झांक तक नहीं रहा था। उसी रात सिक्खों ने सुरंग के मुहाने की मिट्टी हटा दी।

वे कई बैलों को उस सुरंग के रास्ते किले से बाहर ले आए। कुछ ने किले के चारों तरफ तेज बहाव वाले पानी से लबालब भरी खाई को पार किया। उन्होंने तोप में रस्सियां बांध दी और बैलों के जरिए तोप को खींचा। तोप अपनी जगह से हट कर नीचे लुढ़क गई। इसी दौरान तोप और तोप-वाहक अलग-अलग हो गए। तोप के नीचे गिरने से जोर की आवाज हुई। जब शाही सैनिकों ने देखा कि तोप अपनी जगह पर नहीं है तो फौजदार ने तोप ढूंढने का हुक्म दिया। परन्तु उस रात बहुत ढूंढ़ने पर भी तोप नहीं मिली। अन्ततः उसने तोप ढूंढ निकालने के लिए इनाम घोषित किया। अगली सुबह में तोप सिक्खों की पहुंच से दूर लगी हुई थी।

फरूर्खसियर ने 22 फरवरी, 1713 को अब्द-उस-शमद खान को लाहौर का सूबेदार व जकारिया खान को जम्मू का फौजदार नियुक्त कर दोनों को आदेश दिया कि बन्दा को सढ़ौरा से बाहर निकाल दिया जाए और सम्भव हो तो उसे खत्म कर दिया जाए।

तीन हजार जात और पांच हजार घुडसवार के मनसब के ओहदे वाला अब्द-उस-समद खान खुद सढ़ौरा गया जहां सरहिन्द के फौजदार को कोई सफलता नहीं मिली थी। बन्दा खुद लौहगढ़ के किले में ही था। अबद-उस-समन खान ने लौहगढ़ और सढ़ौरा पर

एक साथ हमला करने की बजाए बारी-बारी से कब्जा करने की योजना बनाई। उसने पहले सढ़ौरा की घेराबंदी की। एक तरफ अबद-उस-समन खान खुद था, दुसरी तरफ अहमद खान था, तीसरी तरफ मुगल थे और चौथी तरफ से मिलिशिया ने सढ़ौरा की घेराबंदी की थी। बन्दा ने घेराबंदी में फंसे सिक्खों कोरसद भेजने की कोशिश की। वह एक दिन छोड़कर या रोजाना रसद भेजता था।

लौहगढ़ में ठहरे हुए सिक्खों ने जब खुद को घिरे हुए पाया तो शाही सेना पर भयंकर हमला कर दिया। परन्तु संख्या में कम होने और राशन की कमी हो जाने के कारण वे किला छोड़ने पर मजबुर हो गए। अक्तूबर, 1713 को उन्होंने जमींदारी मिलिशिया पर तेज हमला बोला और उसे चीरते हुए घेराबन्दी में से निकल गए और लौहगढ़ की ओर बढ़ चले। अबद-उस-समन खान और अहमद खान ने लौहगढ़ तक उनका पीछा किया। इन सिक्खों के पहुंचते ही बन्दा लौहगढ़ छोड़कर पहाड़ियों में चला गया। शाही सेना जब शिविर बनाने की तैयारी कर रही थी तो शाही सेना के कुछ घुड़सवार सिक्खों की स्थिति का सही जायजा लेने के लिए ऊंची जगह पर गए जिन्हें देखते ही बन्दा अन्य सिक्खों के साथ नीचे की ओर उतर गया और पहाड़ियों में गायब हो गया। पीछे हटना भी गुरिल्ला जंग का रणकौशल है। बन्दा के हाथ से निकल जाने के बाद जब शाही सेना ने लौहगढ़ के किले का मुआयना किया तो उन्हें प्रतिरोध करने के लिए व्यापक तैयारियां दिखाई दी। पहाड़ी की सतह से किले तक बाईस रक्षात्मक चौकियां बनाई गई थी। ये चौकियां इस तरह से बनाई गई थी कि एक चौकी दूसरी के लिए कवच का काम करती थी। अगर कोई किले की ओर बढ़ता तो उसे कई तरफ से हमला सहन करना पडता। इतनी तैयारी के बावजूद एक बार फिर बन्दा बहादुर को सढ़ौरा का किला खाली करना पड़ा।

स्रोत
गजेटियर्स – अंबाला, कांगड़ा, होशियरपुर, लाहौर, दिल्ली
अजय, गंडा सिंह, रतन सिंह भंगू द्वारा रचित पुस्तकें
विभिन्न वेबसाइट और अखबारों, पत्रिकाओं से मिली सामग्री

स्थापत्य में फ़ासीवाद

✍गोपाल प्रधान

सुरेश प्रताप की किताब 'उड़ता बनारस' हमसे वर्तमान शासन के कुछ कारनामों को गहरी निगाह से देखने की मांग करती है। पिछले लोकसभा चुनाव में बनारस की संसदीय सीट को जीतना प्रधानमंत्री के लिए बहुत आसान नहीं रह गया था। इसके लिए एक प्रत्याशी का पर्चा खारिज करवाना पड़ा और प्रचारकों की भारी फौज का प्रबंध समूचे मंत्रिमंडल को लगाकर और गृहप्रांत से कार्यकर्ता मंगाकर करना पड़ा था। दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल पर शारीरिक हमले करवाने पड़े। इन सबके बावजूद हालत खस्ता होने की वजह बनारस के पारम्परिक स्थापत्य के साथ छेड़छाड़ थी। इस छेड़छाड़

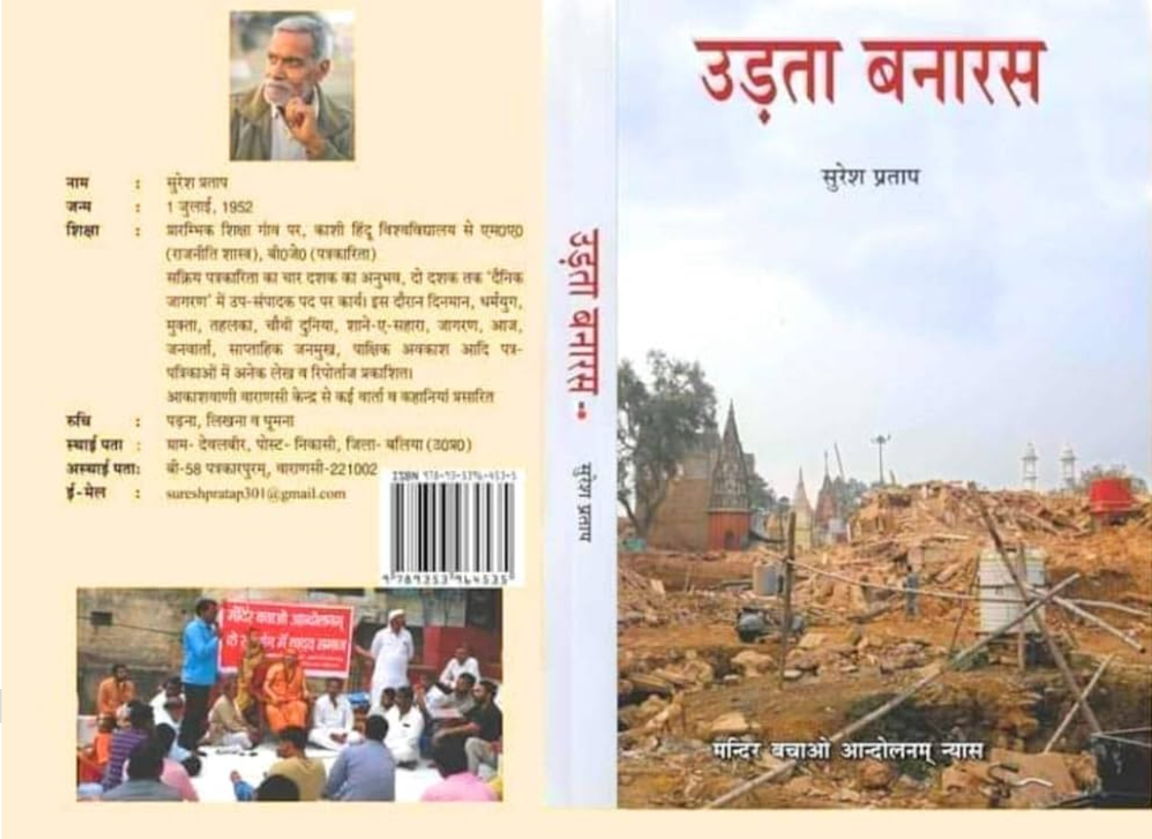

का विरोध स्थानीय आबादी के एक हिस्से ने किया था। शायद इसी के चलते कोई आधार न होते हुए भी केजरीवाल को दो लाख से अधिक वोट मिले थे।

हो सकता है कुछ लोगों को स्मरण हो कि इसी तरह अयोध्या में ढेर सारे मंदिर तोड़े गये थे। इस बार जमीन की खरीद बिक्री का घपला सुर्खियों में रहा। हाल में सूरत में भी एक मन्दिर तोड़ने की खबर आयी है। अचरज कि मन्दिरों को निर्लज्ज भाव से तोड़ने वाली भारतीय जनता पार्टी अपने आपको हिन्दू हितैषी पार्टी कहती है। कहने की जरूरत नहीं कि भाजपा और उसकी मातृसंस्था का हिंदू धर्म की किसी परम्परा से कोई लेना देना नहीं है। उनकी समूची सोच और आचरण में धार्मिकता का रंच मात्र स्पर्श भी नहीं। उनके हाथ हिन्दू धर्म की दशा देखकर तो कबीरदास की कविता 'ठाढ़ा सिंह चरावे गाई' चरितार्थ होती नजर आती है। धर्म के साथ उनका यह आचरण अकारण नहीं है। इसके मूल में आर्थिक न्यस्त स्वार्थ देखे जा सकते हैं। इसे लोकप्रिय भाषा में धर्म का धंधा भी कहा जा सकता है जिसमें धर्म के मुकाबले धंधे की प्रमुखता होती है। वर्तमान शासक समुदाय इसे छिपाता भी नहीं है। खुलकर वे बताते हैं कि टूरिस्टों को आकर्षित करने के लिए वे ऐसा कर रहे हैं। इस तरह विकास नये चरण में पहुंच गया है जहां देश के निवासियों की सुविधा से अधिक ध्यान विदेशी टूरिस्टों का रखा जाना है।

बनारस में इस किस्म के विकास के लिए पक्कामहाल के जिन भी घरों को तोड़ने के लिए खरीदा गया या बिना खरीदे धमकाकर कब्जा कर लिया गया या घर के बगल में गहरा गड्ढा खोदकर गिरा दिया गया उनके लिए व्यावसायिक और व्यापारिक हितों का हवाला दिया गया। बनारस का ऐसा बुनियादी रूपांतरण करने के उपरांत जिस ढांचे को खड़ा किया जाना है उसका नक्शा जिस संस्था ने तैयार किया वह वही संस्था है जिसने गुजरात दंगों में मटियामेट कर दी गयी मस्जिदों, मकबरों और अन्य इस्लामी इमारतों की जगह पर बनने वाले स्थापत्य का नक्शा तैयार किया था। अचरज नहीं कि यही संस्था सेंट्रल विस्ता का भी नक्शा तैयार करने के लिए जिम्मेदार है। सबसे बड़ी बात कि इस परियोजना के लिए एक स्वतंत्र निकाय का गठन किया गया जो नगर की अन्य संस्थाओं के प्रति जवाबदेह ही नहीं है। इसीलिए कोई बताने को न तो तैयार है, न ही जानता है कि इस परियोजना का असली स्वरूप क्या है। मकान ढहाये जा रहे हैं और स्थानीय लोगों को पता भी नहीं कि अगला नम्बर किसका है।

इस सरकार के प्रत्येक कदम के साथ गोपनीयता अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती है। नोटबंदी का फैसला किसने लिया इसके बारे में कोई नहीं जानता। बनारस में एक फ़्लाइ ओवर गिरने से बहुतेरे लोगों की जान चली गयी थी। उस निर्माण का ठेका किसको दिया गया था, यह भी रहस्य ही रह गया। प्रधानमंत्री रास्ते में अचानक उतरकर पाकिस्तान में

नवाज़ शरीफ़ से मिलने किस लिए गये, पता ही नहीं लगा। प्रधानमंत्री राहत कोष के रहते हुए भी पी एम केयर फ़ंड बनाने की जरूरत आखिर पड़ी क्यों इसके बारे में हवा को भी कुछ न मालूम होगा! चुनावी चंदे की व्यवस्था को पारदर्शी बनाने के लिए जो एलेक्टोरल बांड लाया गया उसके बारे में सरकार को तो सब कुछ पता है यानी उसे पता है कि विपक्षी दलों को कौन चंदा दे रहा है लेकिन सरकार पर काबिज पार्टी ने कितना धन लुटेरों से हासिल किया इसकी जानकारी आम जनता को नहीं हो सकती। सबसे हालिया प्रकरण व्यापक जासूसी के लिए प्रयुक्त पेगासस नामक उपकरण के इस्तेमाल से जुड़ा हुआ है जिसके बारे में सरकार सर्वोच्च न्यायालय तक को सही बात बताने के लिए राजी नहीं है। लगता है जैसे धोखेबाजों का कोई गिरोह सत्ता पर काबिज हो और अपने पापों का भंडाफोड़ होने से डरा हो या घमंड में इतना चूर हो कि पूछने वालों को गुस्ताख समझता हो।

इस पहलू के साथ ही एक और बात जुड़ी हुई है। सरकार का नये संसद भवन के प्रति सनक भरा अनुराग बहुतों की समझ से परे है। इसे स्थापत्य के साथ विचारधारा के संबंध के आधार पर समझा जा सकता है। आम तौर पर सत्ता अपनी विचारधारात्मक मौजूदगी को स्थायित्व प्रदान करने के लिए स्थापत्य का सहारा लिया करती है। मंदिर, किले, मकबरे या मीनारें केवल कंकड़ पत्थर के ढांचे नहीं हुआ करते, वे अपनी समूची बनावट और बरताव के रूप में किसी न किसी विचार का व्यापक सामाजिक संप्रेषण करते हैं। तभी प्रत्येक शासक इनके बनाने और रखरखाव के मामले में इतनी रुचि लेता है। किस्सा कोताह कि बनारस या नये संसद भवन के रूप में और उनके बनाने की समूची प्रक्रिया में जो भी नजर आ रहा है उसे ध्यान से देखना चाहिए क्योंकि उससे फ़ासीवादी विचार की झलक मिलती है। इस विचार में केवल हिंदू धर्म को खोजना नासमझी होगी। इसके साथ गहराई से पूंजी जुड़ी है। इसलिए भी इसे हिंदुत्व का नाम दिया गया जो हिंदू धर्म से भिन्न किस्म की चीज है। जिस तरह इस्लाम से नये कट्टर तत्वों को अलगाने के लिए उसे राजनीतिक इस्लाम कहा जाता है उसी तरह हिंदू से हिंदुत्व अलग है। कुछ पहले तक हिंदू धर्म के राजनीतिक इस्तेमाल की बात की जाती थी लेकिन इस समय तो शुद्ध रूप से देशी-विदेशी पूंजी की ताबेदारी का रिश्ता धर्म की आड़ में छिपाया जा रहा है।

लेखक खुद स्थानीय पत्रकार रहे हैं इसलिए उनकी प्रस्तुति में रपट जैसी निष्पक्षता है। उन्होंने सभाओं, गोष्ठियों, जलसों, जुलूसों और विज्ञपतियों के हवाले से अपनी बात कही है। अपनी राय उन्होंने कहीं व्यक्त नहीं की है। पत्रकार होने से ही तथ्यों की सहज संवेदनशील प्रस्तुति पर भी उनको महारत हासिल है। बनारस की गलियों और घाटों, उसकी मस्ती और उसके आकर्षण को अपनी भौगोलिक जानकारी के साथ लेखक ने प्रस्तुत किया है। सदियों पुरानी बनारस की इस संस्कृति के साथ तुलसी, कबीर और रैदास का अभिन्न रिश्ता रहा

है। इन सबकी रूढ़िभंजकता का प्रमाण देने की जरूरत नहीं। भक्ति के आवरण में उपजे उस विद्रोह की छाप बनारस की विशेषता है। इसी जीवन के आकर्षण में तमाम विदेशी बनारस आते हैं और उनमें से अनेक यहीं बस जाते हैं। बनारस की संकरी गलियों में समूचा जीवन धड़कता है। लेखक ने बताया है कि इनकी खास संरचना के कारण गलियों में तापमान सहनीय बना रहता है। फ़ासीवादी दिमाग को यह टेढ़ी बात समझ नहीं आती। उसे लगता है कि विदेशी टूरिस्ट तभी आयेंगे जब उन्हें यहां अमेरिका नजर आये। वे आयेंगे तो विदेशी मुद्रा आयेगी। विदेशी मुद्रा के बिना देश की औकात कुछ नहीं। इसी सोच के साथ प्रशस्त विश्वनाथ कारीडोर और गंगा पाथवे के निर्माण का नक्शा तैयार किया गया। समझ नहीं आता कि अगर कोई बनारस आयेगा तो वहां बनारस खोजेगा या अमेरिका ही चाहेगा। विश्वनाथ कारीडोर और गंगा पाथवे तो फिर भी समझ आता है लेकिन गंगा को भी गहरा करने का उद्यम इतना खब्ती है कि उसकी धारा के पेटे से बालू निकालकर पानी के ही भीतर किनारे एकत्र किया गया ताकि बड़ी जहाजों के चलने लायक गहराई तात्कालिक रूप से पैदा हो। बहते पानी में ऐसा करने की सोच शुद्ध नौकरशाहाना दिमाग से ही पैदा हो सकती है जिसके लिए प्रदर्शन का ही अर्थ हो, उपयोग की दीर्घकालीन योजना की रत्ती भर भी चिंता न हो।

तथाकथित विकास का यह हमला इतना जोरदार है कि हिंदू धर्म के पारम्परिक मंचों की ओर से भी विरोध शुरू हुआ है। असल में धर्म का यह कारपोरेटी स्वरूप धार्मिकों के लिए भी अबूझ है। लेखक ने इस तरह के विरोध को किताब में स्वर दिया है। इस विरोध की अगुआई स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद ने की। स्थानीय लोगों ने इस प्रचंड तोड़फोड़ की काट के लिए बनारस के पारम्परिक स्वरूप को धरोहर का दर्जा देने की मांग उठायी ताकि धरोहर के संरक्षण के तर्क से लोगों के रिहायशी मकान बच सकें। शायद वे सत्ता की वर्तमान नरभक्षी भूख को आंकने में नाकामयाब रहे जिसमें मकान तो क्या, हवाई अड्डे, सड़क और लाल किला जैसे लाभ देने वाली धरोहर भी बिक रही है। इस रथ के क्रूर संचालन के उत्साह में आम लोगों और उनकी जीवन पद्धति की बलि होनी तय है। सत्ताधीशों को किसी भी व्यक्ति की चीख सुनायी नहीं देगी।

प्रधानमंत्री को संसद में भेजने वाले इस नगर को उन्होंने अपनी सौंद्रर्याभिरुचि की प्रयोगशाला बना डाला है। उनकी अभिरुचि के सबूत तमाम धरोहरों और कमाऊ जगहों को पूंजीपतियों के हाथ गिरवी रखने के उन्माद में निहित हैं। नवउदारवादी सौंदर्यबोध को हम पूंजी की आक्रामकता के अनुरूप ढलता हुआ देख रहे हैं। इसमें नव धनिकों के लिए ही सब कुछ उपलब्ध होगा। सड़कें उनकी कारों के चलने लायक होंगी, सभी आवास होटल होंगे और संस्कृति को लाभ देने की क्षमता से तौला जायेगा। अचरज नहीं कि इस परियोजना

में बनारस की मशहूर कारमाइकेल लाइब्रेरी, गोयनका पुस्तकालय, गोयनका छात्रावास तथा एक वृद्ध आश्रम को भी चार सौ घरों के साथ जमींदोज किया जाना है। होटल, माल और हाइवे ही नये समय का आख्यान लिखेंगे। स्वाभाविक रूप से उनके साथ मुंद्रा बंदरगाह से आयी हेरोइन भी रहेगी।

जिन मार्मिक कहानियों को लेखक ने दर्ज किया है उनमें 87 वर्षीय केदारनाथ व्यास की व्यथा कथा सबसे गहरी है। इस बुजुर्ग का मकान गिराने के लिए नींव के साथ गहरा गड्ढा खोद दिया गया और उसमें पानी भर दिया गया। दीवारों में दरारें पड़ी और पूरा मकान भहराकर गिर पड़ा। मजबूरन उन्हें किराये के मकान में जाना पड़ा। जब वे प्रधानमंत्री के जन्मदिन के अवसर पर उनके वाराणसी आगमन के समय धरने पर बैठने को उतारू हुए तो प्रशासन ने 48 घंटे का समय मांगा। इससे भी साबित हुआ कि कोई निश्चित योजना बनाये बिना ही मकानात तोड़ने की शुरुआत कर दी गयी। इस विध्वंस का शिकार न केवल सामान्य जन बल्कि उनकी ही पार्टी के सबसे लम्बे समय तक विधायक रहे श्यामदेव रायचौधरी भी हुए और उन्हें भी प्रधानमंत्री ने कोई आश्वासन दिया। सभी पुराने नेताओं की तरह वे भी इस आश्वासन के शिकार बने रहे और सत्ता तक पहुंच थैलीशाहों की बन गयी। कहना न होगा कि थैलीशाहों के हाथ में अर्थतंत्र और राजनीति के साथ समूचा देश भी जा रहा है। किताब हमारे सामने वर्तमान सत्ता के कारनामों का एक खास पहलू पुरजोर तरीके से उजागर करती है।

लोकवाणी

सुल्तान की सवारी

सुल्तान की सवारी निकल रही थी और बूढा फकीर उसके रास्ते में ही बैठा हुआ था।

वजीर पंहुचा – बाबा ! दुनियाँ का सबसे ताकतवर सुल्तान इस रास्ते से गुजर रहा है , क्या तुम उसका अभिवादन नहीं करना चाहोगे ? उठो और रास्ते के किनारे खड़े हो जाओ ।

बूढा फकीर बोला – पर मुझे यह तो बताओ कि खुदा ने प्रजा की देखभाल के लिये सुल्तान बनाये हैं अथवा सुल्तान की सेवा के लिये प्रजा को बनाया है ?

- **राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी**

करमचंद केसर की दो हरियाणवी रचनाएं

उसकै घरां अंधेरा सै इब।
मुसकल बीच कमेरा सै इब।

न्याँ-नीति की बात रह् यी ना,
गूँड्याँ कै सिर सेह् रा सै इब।

एक जणे कै चमक चाँदणी,
सत्तर घरें अंधेरा सै इब।

जिन्दगी रह सै लाळ-दबाऊ,
डाम्मा डोल बसेरा सै इब।

बिना सफारश काम बणै ना,
बाळक तक नैं बेरा सै इब।

बणजी कहै मुल्क म्हं सब कुछ,
मेरा ,मेरा ,मेरा सै इब।

करतूतां तै न्यूँ लाग्गै सै,
लीडर जणो लुटेरा सै इब।

पढ़े -लिखे लोगां का 'केसर',
अळकस के घर डेरा सै इब।

जिसनैं लाग्गै डर दुनियां म्हं।
वा समझो गया मर दुनियां म्हं।

फेर् पड़ौसी नहीं सुहावैं ,
पेट जावै जद भर दुनियां म्हं।

गैर भरोस्सै डींग धरै ना,
खोल आपणे पर दुनियां म्हं।

उसनैं दुनियां आच्छी लाग्गै,
जिसका बी गया सर दुनियां म्हं।

बोह्त कुछ तो सै बेसक पर,
सब कुछ ना सै जर दुनियां म्हं।

याद करैंगे लोग तनैं बी,
कुछ तो नेकी कर दुनियां म्हं।

उलटे ओग क्यूँ ठोक्कै सै,
सीधे गैरे धर दुनियां म्हं।

यूह जीणा बी के जीणा सै,
जीणा सै तो मर दुनियां म्हं।

जो जुल्मी तै टक्कर ले ले,
उसनैं क्हैं सैं नर दुनियां म्हं।

देस कौम की खात्तर 'केसर',
कटा लिये चै सर दुनियां म्ह

झूठे वादे

दीपक बिढाण

झूठे सैं यै वादे, झूठे थारे नारे
खोखला सै यु तंत्र , फरेबी सारे जयकारे
काले सैं भीतर इनके धोले कपड़े पारे
कुकर मान लय कानून न वा बिलखदी माँ
पानी बाबत लाल जिसका थम खारे

पैट क न कालजा आया होगा फुल्ले का
ईंधन ठंडा होग्या माँ के बलदे चूल्हे का
रोइ सै किताब, सुबक्या सै मान गुरु का
फिरै सै बिलखदा बाप ओ काली रैताँ मैं
उलझ क न रहग्या बाबा साहेब ताणा-बाणा जैतां मैं

कड़े मरगे वें मारे गेल बेठ रोटी खाणिये
रै वें खोवे प हाथ धार, कोली भर फोटू खिंचवानिये
बोट बन क न रैगे सां ईनके लकसना मैं
रै कड़े खुगे वें , महारा जीण- मरण का ठेका ठाणिये
कुकर करले वा बेबे सब्र, खा लिए जिसके पोंची बँधवाणिये

पाणी की ना लड़ाई या, बात सै लिखण- पढ़ण की
बराबर मैं खड़े होंण लागगे, करें बात आगे बढ़ण की
और कुछ नहीं , नीरा डर सै यो खोखली चौधर का
ना जरूत इब बांदर घुर्किया त डरण की
उठ कै न कठे हो, घडी सै इब लड़ण की

मो. 9467328865

हिंदी साहित्य में महिला आत्मकथा लेखन

डॉ अहिल्या मिश्रा

भारतीय संस्कृति में मानव निर्माण के साथ दो जातियों का निर्माण हुआ। स्त्री एवं पुरुष। पूर्व में स्त्री पुरुष के समान अधिकार युक्त थी। काल के गर्भ से प्रणीत सत्य धीरे-धीरे स्त्री को कई सारे बंधनों में बांधता चला गया। भारतीय स्त्री जो उच्चतम संस्कृति की वाहक थी उसे पदच्युत कर दिया गया। खैर लंबे समय के इतिहास के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में क्षरण के कई अध्याय सन्निहित है। मैं इसके विस्तार में नहीं जाकर मध्यकाल एवं परिवर्तित काल में स्त्री के स्थान में हुए निरंतर बदलाव एवं मानवी से इसके वस्तुया धन के रूप में परिवर्तित स्वरूप की ओर अपनी सोच को मोड़ती हूं तो पाती हूं कि एक-एक सीढ़ियां उतरते हुए स्त्री अपने पूर्व स्थापित सत्ता खोने लगी। इस बीच बाह्य आक्रमणों एवं बल प्रयोग ने अपनी मान्यताओं एवं बर्बरताओं के कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत को चोट पहुंचाया। हम घूंघट, पर्दा, धर्म (स्त्री धर्म) के रूप में मानने एवं अपनाने हेतु बाध्य हुए। हम कोमलता, ममता, एवं शारीरिक क्षमता के आधार परमूल्यांकित किए जाने लगे। इससे हमारा आत्मविश्वास कम हुआ और हमारा साहस टूटा। हमारा शौर्य क्षतिग्रस्त हुआ। हम गुलामी एवं पराधीनता के ग्रास बनने लगे। हमारा जीवन, हमारे भरण-पोषण के अधिकारी पुरुष के हाथों में पहुंचा और अपने लिए किसी तरह के निर्णय के अधिकारी नहीं रहे। मात्र कठपुतली बन कर रह गये।

मनुस्मृति के अनुसार भाई, पिता या पुत्र के संरक्षण में वयनुरूप जीने के लिए स्त्रियाँ सीमाबद्ध की गई। स्वाभाविक है इस पोंगापंथी विचारधारा में स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व कहां विकसित हो पाता। कोई भी स्त्री अपनी आत्मकथा कैसे लिख पाती। यह सोच भी उसके अंदर नहीं पनप सकता था। वैदिक काल के पश्चात् पौराणिक युग कथा कहानियों का युग रहा है। कई स्त्रियों की गाथाएं रची गई। साहस की कथा गाथा लिखी गई। पंचकन्या से लेकर दुर्गा स्वरूप की कहानी बनी लेकिन यह औरों केद्वारा लिखी गई। कोई स्त्री यह संरचना या आत्मलेखन की ओर शायद हीप्रवृत्त हुई हो। सर्वप्रथम आधुनिक युग के आरंभ में कहीं यह

विचारधारा पनपती नजर आती हैं। स्त्रियां बहुत बाद में अपनी आत्मकथा लेखन में रुचि दिखाने की साहस कर पाई है। पुरुष आत्मकथा लेखन की भरमार के बीच स्त्री आत्मकथा लेखन का स्रोत कहीं दूर तक दिखाई नहीं देती है। बहुत खोज के बाद मुझे जानकी बजाज द्वारा लिखित 'मेरी जीवन यात्रा' (सन् 1956) के रूप में पहली स्त्री आत्मकथा के दर्शन हुए। वर्षो से कैद और सहिष्णुता पूर्वक जीवन जीने वाली स्त्रियां कलम पकड़ने के पश्चात् भी अपनी आत्मकथा लिखने से परहेज करती रहीं कि उनके मिजाज का निजत्व इस लेखन से सार्वजनिक हो जाएगा। इससे उन्हें पारिवारिक एवं सामाजिक क्षति उठानी पड़ेगी। धीरे-धीरे पुरानी मान्यताएं टूटती गईं। नए सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं का निर्माण हुआ। इससे साहस संजोकर स्त्रियों के द्वारा आत्मकथा लेखन आरंभ हुआ और असूर्यपश्या सात-सात अवगुणों से आबद्ध, चूल्हे चौके के संग दुख-सुख का बंधन बांधने वाली, पति की मृत्यु पर सती हो जाने वाली, भीरू स्त्री इस परिवर्तित मूल्य बोध के प्रति जागरूक हुई और आधुनिक काल में अपने जीवन के संघर्ष को चित्रित करने लगी। मान्यताओं के टूटने पर महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगीं। समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं, रीति-रिवाजों और परंपराओं के बंधन से निकलने के लिए छटपटाहट बढ़ी। इन्होंने कलम को हथियार बनाया। बहुत सारी स्त्रियाँ कई क्षेत्र में कलम चलाने लगी।

अपने आत्मसंघर्ष को अपनी आत्मकथा में चित्रित करना भी आरंभ किया। मराठी, पंजाबी, बंगला आदि भारतीय भाषा में लिखित आत्मकथाओं से प्रभावित होकर हिंदी की लेखिकाएं भी आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त हुईं। इस प्रकार आत्मकथा लेखन में कौशल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' (1999), मैत्रेई पुष्पा 'कंस्तूरी कुंडलि बसै' (2002) एवं 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008), प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' (2007), रमणिका गुप्ता 'हादसे' (2005), सुशीला राय 'एक अनपढ़ कहानी' (2005), अनीता राकेश 'संतरें और संतरें' (2002), मन्नू भंडारी 'एक कहानी यह भी' (2007), कृष्णा अग्निहोत्री 'लगता नहीं है दिल मेरा' (2010) एवं 'और.. और.. औरत' (2011), सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द' (2011), 'मेरी क़लम मेरी कहानी' (2014), अमृता प्रीतम 'रसीदी टिकट', शिवानी कृत 'सुनौ: तात यह गत मोरी',पद्मा सचदेव कृत 'बूंद बावरी', चंद्रकिरण सौनरेक्सा कृत 'पिंजरे की मैना', रमणिका गुप्ता कृत 'अपहुदरी', निर्मला जैन कृत 'जमाने से' आदि आत्मकथाओं के माध्यम से महिलाओं ने अपनी करुणा व्यथा मानसिक घुटन एवं संघर्ष आदिको व्यक्त किया है।

इसी कड़ी में डॉ अहिल्या मिश्र कृत'दरकती दीवारों से झांकती जिंदगी' सन 2021 में प्रकाशित हुई है। उपरोक्त उल्लेखित सभी नाम की आत्मकथा लेखिकाओं ने आत्म संघर्ष को पाठकों के समक्ष रखी है तो दूसरी ओर अन्य महिलाओं की जो समाज में अत्याचारों

को सहकर भीचुप रहती है, अस्मिता को जगाती है, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं। अहिल्या मिश्र की आत्मकथा के साथ एक बात लीक से हटकर हुई है कि यह अपने में औपन्यासिक तत्व कोसमाहृत किए हुए है। इसमें आत्मकथा के प्रमुख तत्वों के साथ उपन्यास के सभी तत्व भी समाहृत है। लेखिका का बचपन, गांव, सामाजिक जीवन, पारिवारिक परिवेश एवं संघर्ष से शक्ति प्राप्ति अंकित है। जीवन के सुख-दुख, विकास की दिशा में बढ़ते कदम पारंपरिक स्त्री संघर्ष, विरोध के स्वर, पिता-पुत्र-पति के साथ तारतम्य, उनका योगदान तथा बदलते परिवेश के साथ किए गए समझौतों का सत्य एवं तथ्यपरक चिंतन उकेरा गया है। वास्तव में आत्मकथा लेखन स्वयं के भीतर छिपे अदृश्य संसार को अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ उससे जुड़े समाज, सांस्कृतिक परिवेश सहित वस्तुनिष्ठ रूप से पूरी ईमानदारी के साथ पाठकों के समक्ष उद्घाटित करने की एक साहित्यिक विधा है।

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज एवं पुरुष वर्चस्ववादी रहा है। तदानुसार ही इसकी सामाजिक संहिताएं निर्मित है। महिला कथाकारों के अनुसार पुरुष वर्ग को हमारे सभी धर्म ग्रंथों में अपने पूर्ण स्वतंत्रताएवं सुविधानुरूपजीवन व्यतीत करने की आजादी प्रदान की गई है, वहींस्त्रियों को पुरुषों के आदेशानुसार उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर परतंत्रता की भावना को आत्मसात करते हुए जीवन यापन का निर्देश दिया गया है। इन नियमों के पालन हेतु स्त्रियों को बचपन से ही सहनशील होने की शिक्षा दी जाती है। इसके साथ ही उसे मानसिक रूप से पुरुषों द्वारा प्रत्येक शोषण को अपना भाग्य मानकर स्वीकारने तथा बिना शिकायत किए हुए जीने की सीख दी जाती है। यह तथ्य है जिसके कारण महिला सर्जनकारों में आत्मकथा लेखन में संकोच बना रहा। 20वींसदी में तो कोई लेखन हुआ नहीं। स्वतंत्रता पश्चात भारत में केवल राजनैतिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर भी विस्तृत रूप से बदलाव की आंधी चली। आधुनिक शिक्षायुक्त समाज का एक बड़ा वर्ग विशेष रूप से युवा वर्ग ने सदियों से प्रचलित सड़ी गली मानसिकता के जर्जर नियम तथा रूढ़ियों के विरुद्ध अपनी लेखनी चलायी। इससे दबे-कुचले वर्ग को वाणी मिली तथा इसका साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। एक व्यापक स्तर पर महिला लेखिकाओं द्वारा सामाजिक वर्जनाओं को अनदेखा कर बिना किसी लाग लपेट के आपबीती को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की पहल एक सामाजिक क्रांति के रूप में साहसिक पहल थी। इसके माध्यम से समाज, संस्कृति तथा धर्म के नाम पर किए जाने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश तो हुआ ही साथ ही एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले लोगों के चेहरे से मुखौटा भी उतरा। निम्न वर्ग में व्याप्त रिश्तों का दुरुपयोग तो अशिक्षा के कारण बाहर आ जाता था। किन्तु मध्यम वर्गीय तथा उच्च्च वर्गीय समाज अपने आप में सीमित रहने के कारण ढक-तोपकर आगे बढ़ जाता है। स्त्रियों ने पूर्ण साहस से सत्य को उद्घाटित किया।

21वीं शताब्दी के आरंभ में स्त्री विमर्श साहित्य के केंद्र में रहा तथा इसका प्रभाव साहित्य की एक विधा पर दृष्टिगत हुआ। विशेषत: आत्मकथा लेखन पर। साहित्य के प्रत्येक विधा के साथ इस गहन विमर्श ने स्त्रियों को स्वयं की पहचान करवाई। समाज में उनके होने एवं अपने अस्तित्वसे परिचित करवाया। पूर्व में स्त्री केवल मां, पत्नी, बेटी, भाभी, मौसी, चाचीआदि संबोधनों से जानी जाती रही है। सिमोन द बाउवरकी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का उल्लेख यहाँ उचित होगा कि "औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है।"उसे दोयम दर्जे का माना जाता है। आधुनिक शिक्षा से पूरित आत्मनिर्भर स्त्रियों ने इन तथ्यों को गहनता पूर्वक समझा। अपनी आवाज बुलंद करने का साहस दिखाते हुए भोगे हुए यथार्थ का उसकी समूची पृष्ठभूमि एवं उत्तरदायी कारणों (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक) को ईमानदारी तथा तटस्थता सहितपाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। मन्नूभंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, प्रो. निर्मला जैन, शीला झुनझुनवाला, अजीत कौर, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, कौशल्या बैसंत्री, चंद्रकिरण सौनरिक्शा, डॉ अहिल्या मिश्र आदि कुछ ऐसी लेखिका हैं जिनकी आत्मकथा में उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ नारी अस्मिता निज से वाद-विवाद, यौन सूचिता आदि प्रश्नों पर गहन विवेचन-विश्लेषण प्राप्त होता है।

विवेच्य लेखिकाओं की आत्मकथा में चित्रित नारी जीवन में पर्याप्त भिन्नता पाया गया है। स्वाभाविक है कि उनके जीवन का विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश से उनका संबंध है कुछ का जन्म ग्रामीण परिवेश में तो कुछ का जन्म कस्बों में तथा कुछ का महानगरों में हुआ। संबंधित परिवेश की विविधता एवं इससे संबंधित प्रभाव जीवन एवं लेखन में परिलक्षित होता है। साथ ही कुछ लेखिकाओं की आत्मकथा में पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का भी व्यौरामिलता है। यह उनके विदेश यात्राओं का प्रभाव है। निर्विवाद सत्य है कि सामाजिक आचार-विचार के साथ प्रत्येक देश, राज्य तथा क्षेत्र विशेष की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है जो उसकी पहचान होती है एवं वही समाज उससे जुड़ी संस्कृति के साथ व्यक्ति के जीवन को प्रभावित तो करता ही है साथ ही उसकी मानसिकता को भी गहन रूप से प्रभावित करता है। सामाजिक तथ्यों के साथ उपरोक्त लेखिकाओं की आत्मकथा में एक तथ्य विशेष रूप से उभर कर सामने आया है - नारी शोषण। नारी अपने बाल्यावस्था में हो, किशोरावस्था में हो, युवावस्था में हो,अधेड़वास्था में होया वृद्धावस्था में, पुरुष सत्तात्मक समाज हर स्थिति में उसके विविध आयामों में उसे शोषित करता रहता है। शारीरिक स्तर से लेकर मानसिक एवं भावनात्मक रूप से शोषण प्रमुख है।

उपरोक्त लेखिकाओं की आत्मकथाओं में नारियों के शोषण के दोनों रूप शारीरिक एवं मानसिक शोषण के साथ भावनात्मक शोषण का भी अति सूक्ष्मता पूर्वक चित्रण हुआ

है। ऐसे शोषण का शारीरिक कोई लक्षण दिखाई नहीं देती है किंतु मन मस्तिष्क पर इसका गहन प्रभाव पड़ता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा "एक कहानी ऐसी भी" इसका जीवंत एवं साक्षात् उदाहरण है। सुप्रसिद्ध लेखक स्व राजेंद्र यादव से उनका प्रेम विवाह असफल सिद्ध हुआ। अपने पति से उन्हें जीवन पर्यंत बेवफ़ाई, तिरस्कार तथा अवहेलना मिला। प्रेम विवाह एक खोखला विवाह संस्कार बन गया। प्रेम हवा-हवाई होकर मात्र विवाह शेष रह गया था। दाम्पत्य जीवन के आरम्भ में ही उन्हें 'समानांतर जीवन का सूत्र' सिखा दिया गया। यानी कि छत एक ही होगा परंतु दोनों के अधिकार के क्षेत्र एक अलग अलग होंगे। मन्नू लिखती हैं - "प्रथम रात्रि को राजेंद्र जब मेरे पास आए तो उनके रंगों में लहू नहीं अपने किए का अपराध बोध था… बिलकुल ठंढे और निरुत्साहित। और फिर यह ठंडापन हमारे सम्बंधों के बीच स्थायी बनकर जम गया।"

मन्नू जी पैंतीस वर्षों तक इस निर्जीव रिश्ते को ढोती रहीं। निरंतर तनाव ग्रस्त रहने के कारण उन्हें न्युरोलॉजिया के दर्दनाक दौड़े पड़ने लगे। ऐसी स्थिति में भी राजेंद्र यादव उनकी दर्द और तकलीफ़ को अनदेखा कर अपने मित्र एवं उसकी पत्नी के साथ एक गोष्ठी में जहाँ मन्नू जी भी आमंत्रित थीं जाने का कार्यक्रम बना लिए। उनकी असम्वेदनशीलता को उजागर करते हुए मन्नू जी लिखती हैं कि राजेंद्र जी उनसे कहने लगे "मन्नू नहीं जा रही है तो क्या हुआ…. मैं तो हूँ, देखिए तो क्या मौज करवाता हूँ .. और खूब मस्ती मारेंगे.. आप अपना कार्यक्रम बिलकुल कैंसिल नहीं करेंगी… मेरे छटपटाते मन पर मौज करेंगे, मस्ती मारेंगे जैसे शब्द खुदते चल रहे थे। और उससे उपजी तकलीफ़ आंसुओं में बहती चली जा रही थी। मन्नू जी प्रेरणा प्रोत्साहन के अभाव में कहानी लिखती हैं। वह कहानी छप जाती है। तब लेखिका मन्नू भंडारी को अपना एक अलग अस्तित्व नज़र आती है। 'महाभोज' और 'आपका बंटी' के लेखक से अपना अलग अस्तित्व का कर्म कर पाई। इसी तरह की मानसिक त्रासदी से अजित कौर को भी दो चार होना पड़ा। एक सुशिक्षित पति जो कि पेशे से डॉ है उसका व्यवहार उनके प्रति असम्वेदनशील रहा है। अपने चरित्रहीन पति और ससुराल वालों को प्रसन्न करने का हर संभव प्रयत्न किया। किन्तु उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आ पाया।

पति का घर त्यागने के पश्चात् कृष्णा अग्निहोत्री को महाविद्यालय में नौकरी मिली। वहाँ की महिला प्राचार्या उनकी नियुक्ति का आदेश देखते ही बोली- "तुम यहाँ क्यों आई? तुम्हें और कोई जगह नहीं मिली? इसी में अभी भी तुम्हारी भलाई है कि किसी और जगह चली जाओ।"

इसी तरह 'पिंजरे की मैना' में चंदकिरण सोनरिक्शा सास द्वारा एक अल्पायु बालिका वधू के शोषण को उद्धाटित करती हुई कहती हैं कि घर में बहू के आते ही सास ने उससे सौतेलेपन का व्यवहार शुरू कर दिया। मिसरानी छुड़ा दी गई। पाँच-छह व्यक्तियों का खाना वह बारह-तेरह वर्ष की बालिका बना लेती पर जो गाँव से समय-असमय आने वाले मेहमान थे उनके लिए सेरों आटे की रोटियाँ सेंकना उसके लिए कठिन हो जाता था। एक अन्य स्थान पर चंद्र किरण लिखती हैं कि उनके रिश्ते की एक बाल विधवा का पुनर्विवाह कराया गया। किन्तु उसके प्रति व्यवहार अति द्वेषपूर्ण रहा। वह हरदम उसे नीचा दिखाने के बहाने ढूँढती रहती। यहाँ तक कि बच्चों से उनकी जासूसी करवाती। उन्हें स्कूल तक जाने नहीं देती। इसी संबंध में बच्चा अपने पिता से क़हता है कि बाबूजी दादी ने मुझे चौकीदार बना दिया है मैं स्कूल का नागा कब तक करूँगा.... नई माँ दूध में पानी तो नहीं मिला रही है। मलाई छिपा कर तो नहीं रखती।" यहाँ यह सच सिद्ध होता है कि केवल पुरुष ही कटघरे में खड़े नहीं किये गये हैं। कई स्त्रियाँ भी भी इस घेरे में में आती हैं। आत्मकथा के विभिन्न प्रसंगों के बीच रिश्तों का विरोधी स्वरूप एवं स्त्री का स्त्री के प्रति द्वेष भी सामने आता है। ।

मैत्रेयी पुष्पा अपने कॉलेज के समय की एक घटना स्मरण करती हुई बताती हैं कि "गरीब एवं गाँव से संबंधित होने के कारण कॉलेज में पढ़ने वाली अमीर घराने की लड़कियाँ उन्हें नीचा दिखाकर उनका आत्मविश्वास तोड़ने एवं दुख पहुँचाने के बहाने ढूंढती थी। एक दिन तो उनलोगों ने एक बेहद शर्मनाक घटना की रचना रच दी कि मैत्रेयी को अपने लड़की होने पर शर्म हुआ हुआ साथ ही रोना आया। वे रोती हुई उस कुर्सी के पास ठहर गई जहाँ से ये दाग लगे थे। किसी क्रूर लड़की ने कुर्सी पर लाल रंग ही उड़ेल कर लड़की होने का मज़ाक़ उड़ाया था"- कस्तूरी कुंडल बसै- मैत्रेयी पुष्पा।

कस्तूरी मैत्रेयी जी के माँ का नाम है। वास्तव में 'कस्तूरी कुंडल बसै' आत्म कथा उन्हीं के संघर्षों का लेखा जोखा है। कस्तूरी के पति का देहांत होने के बाद एक बाल विधवा द्वारा गोदी की बच्ची को पालना पहाड़ पर चढ़ने के समान था। समाज में पुरुषों की नज़र से अपने कोबचाते हुए तथा बच्ची की रक्षा करते हुए, उसे शिक्षित करते हुए आत्म निर्भर बनाने के लिए किए जानेवाले प्रयास एवं संघर्ष की एक लम्बी शृंखला है जो कभी न ख़त्म होने वाले रास्ते पर जाती है।

कस्तूरी ने छोटी उम्र में जो दुःख झेले जीवन के कठिनतम परिस्थितियों ने उन्हें लड़ना सिखा दिया। उनका कथन है कि एक नारी तभी सम्मान प्राप्त करती है जब वह शिक्षित एवं आत्मनिर्भर हो। लेखिका का मानना है कि नारी का पढ़ा लिखा होने के साथ साथ गृहस्थ जीवन में संतुलन भी बनाने आना चाहिए। उसमें आत्म निर्भरता भी होना चाहिए जिसके

आधार पर जीवन का निर्णय वह स्वयं ले सके। इनका मानना है कि पारिवारिक जीवन में जिम्मदारियों को निभाते हुए विकास करना ही जीवन की सफलता है। मनमानी करना नहीं।

मैत्रेयी जी ने अपने दूसरे उपन्यास 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में अपने संपूर्ण जीवन को खोलकर इसके सभी पन्नों पर फैला दिया है। अलीगढ़ की भंटी बहू से लेकर मिसेज़ शर्मा से होते हुए मैत्रेयी पुष्पा बनने तक की कहानी है यह आत्मकथा। विवाह के पच्चीस वर्ष बाद लेखिका की पहली कहानी 'आक्षेप' साप्ताहिक में छपी तो मिसेज़ शर्मा से पूर्व मैत्रेयी पुष्पा का नाम पुनः सूर्य की भाँति चमकने लगा। फिर शुरू हुआ लेखिका का लेखन संघर्ष एवं अस्तित्व की तलाश। मैत्रेयी जी ने आत्मकथा में स्पष्ट किया कि चाक, अल्मा कबूतरी, अगन पक्षी, इदन्नमम जैसे उपन्यास क्यों लिखे। 'कहे इश्वरी फाग' लिखने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई। लेखिका के अनुसार "विवाह स्त्री के सुरक्षा का गढ़, संरक्षण का क़िला, शांति के नाम पर निश्चिंतता की सन्नाटे भरी गुफा और ग़ुलामी का आनंद।" लेखिका को पति सत्ता के क़िले में रहते हुए अपना लेखन कार्य छिपा कर करना पड़ता है। अस्तित्व की इस लड़ाई की खोज में पारिवारिक कलह के समक्ष अडिग अपने स्वत्व की खोज में लेखिका मानती है कि स्त्रियों का जन्म एक ऐसे पौधे के रूप में होता है जिन्हें हिलाने-डुलाने और विकसित करने के लिए हवा ज़रूरी है। लेकिन हमारे माली बने लोग कहते हैं बौनसायी रहा करते नहीं तो बढ़कर अपनी ख़ूबसूरती खो देते हैं।" लेखिका के अनुरूप भारतीय समाज में गृहस्थों के संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु व पिंडदान तक पुत्रों से बंधा होता है। तीन पुत्रियों की माँ बनने के साथ अपमान एवं सन्नाटा का हृदय विदारक वर्णन लेखिका ने कियाहै।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'कोयला खदानों,' राजनीति तथा सड़क पर मजदूरी करने वाली स्त्रियों की दैहिक तथा मानसिक शोषण को उजागर करती है। निर्मला जैन की आत्मकथा पढ़े लिखे लोगों की सामाजिक विडंबना को सबके सामने लाती है साथ ही शिक्षण संस्थानों में चल रहे शिक्षकों एवं प्रशासन के आपसी घात-प्रतिघात से पाठक को रूबरू करवाती है। एक उच्च शिक्षा प्राप्त स्वाबलंबी स्त्री होने के उपरांत भी उनके जीवन में गुटबाजी एवं घटिया राजनीति के कारण चारित्रिक लांक्षण का सामना करना पड़ता है। उनके चरित्रहरण का प्रयास किया जाता है। तब उन्हें तत्कालीन कुलपति से सहायता हेतु प्रार्थना करती करनी पड़ती है। उन्हीं के शब्दों में - "भर्राई आवाजमें इतना ही कह पाई, मुनीस भाई मेरी इज्जत बचाने के लिए आप क्या कर सकते हैं।"कहते हुए मेरी आंखें भर आईं।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में स्त्रियों पर होने वाले यौन शोषण के कई उदाहरण मिलते हैं। बचपन में उसकी विधवा माता ग्राम सेविका की नौकरी के चलते उन्हें अपने पास न रखकर परिचित तथा संभ्रांत परिवारों में रखती है। उद्देश्य होता है कि वह वहाँ रहकरसुरक्षित रहेगी एवं शिक्षा प्राप्त कर सकेगी। किंतु उसका विश्वास तबखंडित होता है जब मैत्रेयी उन्हें

अपनी आपबीती मर्मांतक शब्दों में लिखती है - "माता जी, वह मुझे रात भर सोने नहीं देता....मैं यहाँनहीं रहूंगी। गांव भाग जाऊंगी। शहर के लोग कैसे हैं।" इसके पश्चात मैत्रेयी की माताजी उसे किसी दूसरे घर में रखती हैं। वहां इस घर का वृद्ध व्यक्ति उससे बलात्कार का प्रयास करता है किंतु उसके विरोध में कहीं से कोई आवाज नहीं उठाई जाती है। वास्तव में ऐसे बहुत सारे लोग मनुष्य के रूप में छुपे हुए भेड़िए हैं जो दोमुंहा जीवन जीते हैं। बाह्य रूप से यह सभ्य तथा आदर्शवादिता स्वर निकालते हैं किंतु वास्तविक रूप से रक्षक ही भक्षक बनते हैं। बाल्यावस्था से ही शारीरिक शोषण का शिकार हुई रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि उनका दैहिक शोषण बाहर वालों ने नहीं अपितु घर में रहने वालों ने तथा काम करने वालों ने किया। अभिजात्य परिवार में पली-बढ़ी रमणिका जी के माता-पिता अति व्यस्त जीवन जीते थे। बच्चों को नौकरी एवं अभिभावकों के सहारे छोड़ दिया गया। एक विश्वसनीय आर्य समाजी मास्टर को अपनी बेटियों की शिक्षा के लिए के पिता ने रखा किंतु वही रामणिका का शील हरण करने लगा। उन्हीं के शब्दों में देखें-"पापा जी और बिबी जी का कमरा अलग था। उन्हें मास्टर जी पर इतना विश्वास था कि देर रात तक उसे मेरे कमरे में रहने पर एतराज नहीं करते थे। मास्टर सारी रात मेरे कच्चे शरीर से खिलवाड़ करता रहा। मैं इतनी भयभीत थी न बोल सकती थी न रो सकती थी। मैं वही करती गई जो मास्टर कहता गया। फिर यह रोज का किस्सा हो गया।" प्रभा खेतान अन्या से अनन्या में लिखती हैं कि वे यहां 9 वर्ष की आयु में अपने ही घर में स्वयं अपने भाई द्वारा यौन शोषण का शिकार हुईं। विडंबना यह है कि दुष्कर्म कर्ता को सजा मिलने की जगह उन्हें ही चुप रहने की नसीहत दी गई। देखें उनके शब्दों में - "जब मैं 9 साल की थी तब घर में.... मैं एकदम चुप हो गई.... उस दिन दाई मां ने भी तो यही कहा था "काहू से न कहियो बिटिया, अपने पति से भी नहीं।" पर क्यों? उत्पीड़न के बावजूद औरत को खामोश रहने को कहा जाता है।

पुरुषों द्वारा नारी को मात्र भोग्या समझने या सामग्री समझने की मानसिकता सदियों से चली आ रही है। जन्म से ही उसे लड़केकी तुलना में हेय समझा जाता है। उसकी अवहेलना की जाती है। बेटा के जन्म परखुशी बेटी के जन्म पर दुख मात्र अनपढ़ लोगों का ही पूर्वाग्रह नहीं समाज का उच्च शिक्षित वर्ग भी इसी संकीर्ण मानसिकता का शिकार पाया जाता है। केवल पुरुष ही भारी शोषण के दोषी नहीं स्त्रियां भी उत्तरदायी होती हैं। कौशल्या बैसन्त्री अपनी मां का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि उन्हें बेटा का बड़ा शौक था। हर प्रसूति के समय पुत्र की लालसा रहती थी। संतान लड़की पैदा होने पर मां बहुत उदास हो जाती। वे कहती थींकि "जाओ उसे कूड़े में फेंक आओ" प्रभा खेतान लिखती हैं कि "अम्मा ने मुझे कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा जी मुझे भीतर बुला लें। शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं। एक शाश्वत दूरी

बनी रही हम दोनों के बीच।" कौशल्या बैसंत्री ने भी अपनी मां की कठोरता का वर्णन किया है। वेबात-बात पर बैसंत्रीको पीटतीथीं। एक बार तो इतना पीटा की पांव का अंगूठा घायल हो गया और अस्पताल ले जाना पड़ा।

यहाँ निर्मला जैन के लेखकीय क्षेत्र के एक अनुभव के माध्यम से पुरुष सम्पादकों की मानसिकता का उदाहरण प्रस्तुत है। हंस के सम्पादक राजेंद्र यादव अपने अहं तुष्टि के लिए जाने जाते हैं। उनकी ऐसी हरकतों पर मन्नू जी से गाहे-बगाहे उनकी कहा सुनी तो होती ही रहती थी। उन्होंने अपनी इन हरकतों से कई लोगों से नाराज़गी मोल ले ली थी। डॉ नगेंद्र उनमें से एक थे। नतीजा यह हुआ कि डॉ साहब भी उन्हें नाम से नहीं, अपशब्दों से नवाज़ा करते थे।

ऐसे ही एक प्रसंग में, मैंने हंस में कभी न लिखने की प्रतिज्ञा की थी। हुआ यह कि एक बार मैं और जैनेंद्र जी एक सेमिनार के लिए जम्मू विश्वविद्यालय में आमंत्रित किए गए। साथ में जैनेंद्र जी के साहबजादे प्रदीप जी भी थे। उस यात्रा के दौरान दो-तीन दिन लगातार उनका साथ बना रहा। उस बीच मेरे मन में उनके बारे में यह धरना और पुष्ट हो गई कि उनके व्यक्तित्व की बनावट ख़ासी जटिल है जिसे समग्रता में समझना आसान नहीं होता।

वापिस लौटकर मैंने उस अनुभव से प्रेरित होकर एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था- 'सिरा कहाँ है?' राजेंद्र यादव बड़े उत्साह से उसे छापने के लिए तैयार हो गए। लेख छप गया। मैंने देखा, पर पढ़ने की ज़हमत नहीं उठाई। अंक मिलने के दो तीन दिन बाद अचानक राज़ी सेठ का फ़ोन आया। लेख उन्होंने खुद तो पढ़ ही लिया था, मुझसे बात करने के पहले अज्ञेय जी को भी पढ़वा दिया था। अज्ञेय जी की प्रतिक्रिया हुई थी: "ये तो कोई बहुत अच्छा काम नहीं किया निर्मला ने!" कुछ ऐसा ही महसूस किया था राज़ी ने भी। अज्ञेय जी से पुष्टि हो गई तो हिम्मत करके मुझे फ़ोन मिलाया। शुरुआत कुछ इधर- उधर की बातों से करके जैसे वे साहस जुटाती रहीं और फिर धीरे से बोलीं: आपका लेख पढ़ा 'हंस' में.." एक क्षण की चुप्पी के बाद जोड़ा उन्होंने : "वैसे आपने हिम्मत बहुत की।" मेरा चौंकना स्वाभाविक था। "ऐसी हिम्मत वाली क्या बात है उसमें।" मुझे जैसा लगा मैंने लिख दिया।" बात आगे बढ़ी: " फिर भी हर कोई तो इस तरह लिखने का साहस नहीं कर सकता। अज्ञेय जी भी ताज्जुब कर रहे थे।" इस बार मेरा माथा ठनका। मैंने बात वहीं रोककर कहा कि "मैंने तो छपने के बाद पढ़ा ही नहीं है। एक बार पढ़के देखती हूँ, फिर तुमसे बात करूँगी।" संवाद वहीं ठप्प।

मैंने तुरंत हंस की 'प्रति' उठाई। लेख पढ़ते ही मेरे पाँव के तले की ज़मीन खिसक गई। राजेंद्र जी ने दो-तीन जगह कलम चला कर उसे ख़ासा कटखना और आपत्तिजनक बना दिया था। मैंने तुरंत फ़ोन मिलाकर जवाब-तलबी की तो ठहाका लगाकर बोले: "अरे आपने

क्या लिखा था, गुडी गुडी मज़ा तो अब आएगा जब लोग पढ़ेंगे। इतना अधिकार तो सम्पादक का होता ही है।" मैं फ़ट पड़ी: छापने या न छापने का अधिकार होता है। लेखक के बिना सहमति के कलम चलाकर तरमीम करने का नहीं। और जहाँ तक मज़ा आने का सवाल है, वह तो आना शुरू हो गया है। मेरी भर्त्सना शुरू हो गई है।" और मैंने उन्हें राज़ी अज्ञेय का प्रसंग सुना दिया। उनपर कोई असर नहीं हुआ इसका। वे उसी तरह ठहाका लगाते रहे। उनका ख़याल था कि पत्रकारिता में यह सब तो होता ही रहता है। इसमें इतना परेशान होने की कोई बात है ही नहीं।

संयोग से उन्हीं दिनों जैनेंद्र अस्वस्थ होकर अस्पताल पहुँच गए। मेरी अगली चिंता यह थी कि बीमारी की हालत में अगर किसी शुभचिंतक ने यह बात उन तक पहुँचा दी या स्वस्थ होने पर उन्होंने 'हंस पढ़ लिया तो वे कितने आहत होंगे! मैंने अगला फ़ोन प्रदीप को मिलाकर उन्हेंइस कांड से अवगत कराते हुए अनुरोध किया कि वे हंस की प्रति जैनेंद्र जी के हाथ न आने दें। मैंने राज़ी को भी इस स्थिति की जानकारी देकर अनुरोध किया की वे अज्ञेय जी को भी इस स्थिति से अवगत करा दें। ज़ाहिर है अज्ञेय जी ने अपनी मितभाषी स्वभाव के अनुरूप इतना ही कहा : "तो फिर इसमें निर्मला का क्या क़सूर है? पर राजेंद्र यादव को ऐसा करना नहीं चाहिए था।"

बात इतने पर ख़त्म नहीं हुई। मैंने राजेंद्र जी को इस प्रसंग पर एक लम्बा पत्र लिखा, यह इसरार करते हुए कि वे इसे 'हंस' में छापें, अन्यथा मैं पूरे ब्यौरे के साथ किसी और पत्रिका में छपवा दूँगी। पत्र की एक प्रति मैंने प्रदीप के पास भेज दी।

पत्र मिलते ही राजेंद्र जी के होश-फ़ाख्ता हो गए। वे स्वप्न में भी ऐसी पत्रिका की उम्मीद नहीं कर पा रहे थे। अपनी सम्पादकीय दादागिरी भुलाकर उन्होंने मुझसे मिलकर बात करने का आग्रह किया। ?घर आए। देर तक मुझे इस बात के लिए क़ायल करने की कोशिश करते रहे कि मैं उस पत्र को छापने का इसरार न करूँ। जब तर्क-युक्ति से काम नहीं चला तो अपनी आदत के अनुरूप उन्होंने ठहाका लगाते हुए फ़रमाया : "अरे यार बस भी करो! अब हो गई गलती, तो क्या जान ही ले लोगी! लो पकड़ लिए तुम्हारे पैर। अब तो बख़्श दो। मैं अपने ढंग से छाप दूँगा। गलती का सुधार करते हुए" और यह कहते हुए उन्होंने सचमुच हाथ बढ़ाकर मेरे पाँव पकड़ लिये। ज़ाहिर है, इसके बाद कहने-सुनने लायक़ कुछ बचा ही नहीं। मैंने भरोसा किया, पर उन्होंने वायदे की औपचारिकता पूर्ति में जो दो पंक्तियाँ छापीं, उनका कोई अर्थ नहीं था। बस नतीजा यह हुआ कि मैंने 'हंस' में लिखना छोड़ दिया। (आत्मकथा पुस्तक से यह अंश उद्धृत किया गया है)

उपेक्षा का यह चक्र ही नहीं रुकता। जीवन पर्यंत गतिशील रहता है। हां रूप बदलते रहते हैं। नारी के शोषण दमन के विरुद्ध सबसे सशक्त शस्त्र शिक्षा को ही माना गया है। शिक्षा

ही वह शस्त्र है जिसके माध्यम से नारी स्वाबलंबी, अपने अधिकारों के प्रति सजग तथा शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकती है। विवेच्य आत्मकथाओंके अनुशीलन के पश्चात चौंका देने वाले तत्वों का उद्घाटन होता है। यह सारे तथ्य वास्तव में गहन विश्लेषण की मांग करते हैं। इन पर विमर्श आवश्यक है। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या तक' अपनी आत्मकथा में अपने जीवन सत्य का कठोर सामाजिक एवं पारंपरिक वर्जनाओं के भीतर पली-बढ़ी एक साधारण सी लड़की अपने बल पर एक सफल उद्योगपति तथा कलकत्ताचेंबर ऑफ कॉमर्स की प्रथम महिला अध्यक्ष बनती है। आर्थिक रूप से एक सफल एवं सशक्त स्त्री होते हुए भी वह भावनात्मक स्तर पर कमजोर साबित होती हैं। अपने जीवन केएकाकीपन को दूर करने हेतु डॉ सर्राफ के साथ तथा उनके परिवार के साथ 25 वर्षों के रिश्तोंके पश्चातइस बेनाम रिश्ते से वे मात्र तिरस्कार बटोर पाती हैं। वे लिखती हैं कि "मैं अकेली थी। इतनी अकेली कि मैं किसी का रोल मॉडल नहीं बन सकी। कोई लड़की मेरे जैसी नहीं होना चाहिए। मेरी तमाम सफलताएं सामाजिक कसौटी पर पछार खाने लगती हैं। सारी उपलब्धियां अपनी चमक खो देतीं ..। जहां तनाव अधिक था कभी न खुलनेवाली गांठेंथीं। डॉक्टर सर्राफपर उनकी निर्भरता आत्ममानसिक रुग्णता बनने लगी। इसे वह सुरक्षा स्वरूप लेने लगी। डॉक्टर सर्राफ प्रेमी से अभिभावक बन गए। आय, व्यय बचत आदि का लेखा-जोखा बच्चों की तरह लेनेऔर रखने लगे। किंतु इनको शककी नजरों से देखते हुए इनपर निगरानी भी रखने लगे। इस प्रकार वह स्वावलंबी होकर भी परावलंबी बनी रही। कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा से भी यह स्पष्ट होता है कि एक अच्छे परिवार की सुशिक्षित तथा आत्मनिर्भर नारी परायों के साथ-साथ अपनों द्वारा भी छली जाती है। उनका अपना भाई उन्हें पैतृक अधिकार से वंचित करता है। अपने चरित्रहीन आई पी एस पति द्वारा अमानवीय व्यवहार का शिकार बनती है। उच्च शिक्षा ग्रहण कर अपने पैरों पर खड़ी होने के पश्चात कार्यस्थल पर तिरस्कृत होना पड़ता है। पति से अलग रहने तथा जवान व सुंदर होने के कारण उन्हें स्वच्छंद प्रवृत्ति का माना जाता है और चारों ओर उपस्थित पुरुषों को लगता है कि वे सहज उपलब्ध होने वाली स्त्री है। 60 वर्ष की आयु में गोवा के रोहिताश्व चतुर्वेदी को अपना उपन्यास प्रकाशन हेतु देना था। उसने उनके सामने गोवा आकर अकेले में मिलने का प्रस्ताव रखा- "मेरी पत्नी यहां नहीं रहती है। गोवा में मैं बहुत अकेला हूं। इस उम्र में हम कुछ कर तो नहीं सकते पर साथ तो चाहिए।" यह उन्हीं का लेखन है। यानी स्त्री मात्र देह और दर्शनीय वस्तु भर है। पुरुष अकेली स्त्री को देखकर सभी सीमाएँ लांघने को उद्दत हो उठता है। इसे उजागर किया गया है।

पुरुषों द्वारा नारी को मात्र भोग्या या भोग की वस्तु समझे जाने के विषय में कृष्णा जी कहती हैं कि "सेक्स के अतिरिक्त भी स्त्री के सामने कई चुनौतियां रहती हैं। उसमें भी वह

भागीदारी चाहती है। इसकी पूर्ति एक योग्य भाई, पति, बेटा यामित्र कर सकता है।" विवेच्य आत्मकथा में नारियों के शारीरिक शोषण के अलावा मानसिक शोषण का भी सूक्ष्मता पूर्वक चित्रण हुआ है। ऐसे शोषण का शरीर पर कोई चिह्न नहीं होता है या दिखाई देता है किंतु मन मस्तिष्क पर यह प्रभाव पड़ता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी ऐसी भी' इसका जीवंत उदाहरण है। राजेंद्र यादव से परिवार के विरोध के बावजूद भी प्रेम विवाह एवं इसकी असफलता के कारण पति की बेवफाई,तिरस्कार एवं अवहेलना की प्राप्ति होती है। प्रेम विवाह मात्र खोखला संस्कार सिद्ध होता है। इसमें प्रेम कहीं नहीं रहता।

अजीत कौर को भी मानसिक त्रासदी से गुजरना पड़ा है। एक सुशिक्षित डॉक्टर पति का व्यवहार उनके प्रति अति असंवेदनशील रहा है। अपने चरित्रहीन पति तथा ससुराल वालों को प्रसन्न रखने का उन्होंने हर संभव प्रयास किया। किंतु उनके प्रति उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आता। एक बार वेबहुत बीमार हो जाती है। अपने पति से कहती है कि "मुझे संतरे ला दो या संतरे के लिए पैसे ही दे दो। डॉक्टर ने जूस पीने को कहा है।" बीमारी में उनसे सहानुभूति जताने के बजाय उनके पति ने कहा "जा अपने बाप के घर अगर संतरे चाहिए तो।"

'पिंजरे की मैना' में चंद्र किरण किरण सोन रिक्शा सास द्वारा एक अल्पायु बालिका वधू के शोषण को उद्घाटित करती हैं। ऊपर संदर्भित स्थिति में एक बालिका पर ढाए जानेवाले जुर्म एवं मानसिक त्रासद का विशद विवरण देती हैं। इसी में आगे के विवेचन को भी देखा जाना चाहिय। ऐसे कई पंक्तियों के बीच वेएक स्थान पर वह कहती हैं कि एक बाल विधवा का विवाह या पुनर्विवाह रचा गया किंतु उसकी सास का उसके प्रति बहुत ही दोषपूर्ण व्यवहार रहा। वह हर दम उसे नीचा दिखाने का बहाना ढूंढती रहती। यहां तक कि बच्चों द्वारा उसकी जासूसी करवाती। उन्हें स्कूल तक नहीं जाने देती। एक बच्चा अपने पिता से कहता है कि "बाबूजी दादी ने मुझे चौकीदार बना दिया है।" इन पंक्तियों को दुबारा रखने में मेरा मक़सद है कि स्त्री विमर्शों के इस भाव के द्वारा स्त्रियों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार का उल्लेख लगभग सभी आत्मकथाकारों ने किया है। पारिवारिक क्लेशकी बात करें तो सर्वप्रथम सास-बहू, ननद-भाभी, देवरानी-जेठानी के रिश्तों पर उंगली उठती है। दांपत्य जीवन में दरारें औरत ही डालती है। वैसे भी ससुराल मैके के बीच आधिपत्य का दंश भी बहू को ही झेलना पड़ता है। ससुराल में मैके से जुड़ी स्त्री को कई बार सास एवं अन्य रिश्तेदारों के ताने झेलने या सुनने पड़ते हैं। स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व गिना ही नहीं जाता। यह भी कुछ आत्मकथाओं में पढ़ने को मिला। इससे उनके कोमल मन पर एक अतिरिक्त दवाब बनता है और वह बेचैन हो उठती है।

21वीं सदी के उत्तरार्ध के पश्चात उत्तर एवं पूर्वकालिक समय में एक आत्मकथा आई है। जिस पर पिछले कुछ समय से चर्चा चल रही है। डॉक्टर अहिल्या मिश्र कृत 'दरकती दीवारों से झांकती जिंदगी'। यह आत्मकथा अभिव्यक्ति की सादगी, जीवन के प्रतिफल में जीया गया अनुभवों का खाड़ापन सार्वजनिकताऔर उत्तर देने की ताकत एवं साहस सार्थक अर्थों को प्रतिपादित करने की क्षमता भावों की संप्रेषनियता के साथ मानवीय मूल्यों को जीने की ललक सहित विभिन्न स्तरों पर संघर्ष,सामाजिक मान्यताओं को तोंड़कर नई स्थापना की शक्ति से लबालब, जीवंत एवं जोश से भरी आज की स्त्री का चित्रण है। परिवार, समाज एवं रिश्तों में बलिदान देने के बजाय रिश्तों की नई परिभाषागढ़नाही इस उत्साही स्त्री की कहानी है। स्त्री शोषण,जमींदारी प्रथा, सीमाओं का बंधन तोड़ते हुए विकास के रास्ते पर बढ़ना यही लक्ष्य है उस स्त्री का। वर्ग भेद एवं इनके सामाजिक आचरण के साथ स्त्री शिक्षा को सर्वोच्च मान्यता देने वाली स्त्री की कहानी जीती एक स्त्री है। इस आत्मकथा में पितृसत्तात्मक समाज से उलझती अहिल्या संघर्षरत है। स्त्री स्वाभिमान हेतु संघर्ष के चरम भी दिखाई देता है। आत्मनिर्भरता का पाठ ही साहस एवं सफलता की कुंजी है। पति के साथ अनजान प्रदेश की यात्रा का साहस अदम्य है। पुनः साहित्यिक क्षेत्र में पुरुष वर्चस्व के बीच पहचान का संघर्ष एवं पुरुष साहित्यकारों की पिछलग्गू नहीं बनने पर उनके द्वारा दी गई संत्रास एवं दबाव को झेलने की क्षमता दिखाना आदि कई स्वरूप उभरकर सामने आए हैं। इस आत्मकथा के माध्यम से हम अहिल्या के मजबूत इरादे के साथ स्त्री उत्थान एवं दृढ़ता से सत्य कहने के साहस का संचार स्त्री के बीच फैलाते हुए पाते हैं। बहुत ही सकारात्मक भाव बनता दिखाई देता है। हां स्त्री का एक नया स्वरूप कहानी में दिखता है। भोजन बनाने की अक्षमता पुरुष सहयोग स्वसुर के रूप में तथा निडरता का व्यापक चित्रण मिलता है। एक वाक्य नारी के परिवर्तित मानसिकता का चित्रण करती है- "खोल अपनी धोती ले अपनी साड़ी आज से तेरा मेरा रिश्ता खत्म।" वह स्त्री इसके साथ ही मायका प्रस्थान कर जाती है। इस प्रकार शोषण के विरोधी स्वर एक स्तम्भ सा सामने खड़ा दिखाई पड़ता है। अभी इस आत्मकथा पर कई टिप्पणियां आ रही हैं। पाठक की रुचि बनी हुई है।

स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के प्रति उपेक्षा पूर्ण व्यवहार का उल्लेख प्रायः सभी आत्मकथाओं में उभर कर आया है। नारी जीवन का विविधा पूर्ण चित्रण करती विवेच्य लेखिकाओं की आत्मकथाओं में एक तथ्य समान रूप से दृष्टिगोचर होता है वह है शोषण का प्रतिकार। देर अवश्य हुआ किंतु अब आधुनिक समय की स्त्रियों ने यह दिखा दिया है कि वे अब शोषण नहीं सहेंगीं। कौशल्या बैसंत्री ने 61 वर्ष की आयु में अपने पति को तलाक देकर जीना शुरु किया। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी पुत्री सहित पति का घर त्याग दिया। अजीत कौर ने भी पति की अवहेलना के प्रतिउत्तर में अपनीदोनों बेटियों के साथ अलग जीवन जीने लगी।

रमणिका गुप्ता अपनी शर्तों पर जीवन जीती रही। प्रभा खेतान विवाह संस्कार को खतरा बताते हुए अपने प्रेम को वरणकर जीवन जीती रहीं। निर्मला जैन भी राजनीति से उभर कर अपनी स्व पहचान बनाने में सक्षम रही। अहिल्या मिश्र अनजान स्थान पर अपने अस्मिता की स्थापना कर एक नई पहचान बना पाई है। उपरोक्त सभी आत्मकथाओं से गुज़रते हुए यह स्पष्ट होता है कि पुरुष वर्चस्व के क़ैद में जकड़ी स्त्री अपने स्वत्व के लिए अपने मान-सम्मान के लिए अपने अंतर्मन के स्त्री को प्रबल, सबल करती है। एवं उनका आत्मविश्वास एवं साहस उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 21वीं एवं 22 वी सदी के आरंभिक दशकों में नारी आत्मकथाओं के बीच स्त्री के सफल एवं सशक्त रूप उभर कर एक नई स्थापना करने में सफल एवं सक्षम हुए हैं। ये सभी नारियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक एवं अपनी अस्मिता के लिए बड़ी चुनौती का सामना सामना करने से नहीं हिचकिचाती है। सभी स्वतंत्रता, स्वावलम्बन आत्मनिर्भरता एवं नारी अस्मिता को शिक्षा के साथ अर्थायित करती है।

संदर्भ:-

१. सभी विवेच्य आत्मकथाएँ

२. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या तक

३. मन्नू भंडारी - एक कहानी यह भी

४. मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरी कुंडल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया

५. निर्मला जैन - जमाने से हम

६.रमणिका गुप्ता - अपहुदरी

७. कौशल्या बैसंत्री - दोहरे अभिशाप

८. कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेरा

९. अजीत कौर - कूड़ा कबाड़

१०. चंद्रकिरण सौनरेक्शा - पिंजरे की मैना

११. डॉ अहिल्या मिश्र - दरकती दीवारों से झांकती ज़िंदगी।

मोबाइल - 9849742803

बेड नम्बर दस

✍डॉ आशा मिश्रा 'मुक्ता'

उसने हाथ का कौर (निवाला) मुँह में डाला। निवाला नहीं मुट्ठी कहेंगे उसे। सामने पेपर प्लेट में पके हुए चावल के दानेंदिख रहे थे। दाल सब्ज़ी तो नहीं थी पर चावल का रंग मटमैला था। शायद उसने सबको एक ही साथ मिला लिया होगा। उसने और एक मुट्ठी मुँह में डाला और इधर-उधर नज़रें घुमाई। नज़रों से लगा कि वह किसी को खोज रही थी या किसी से छुपना चाह रही थी ताकि कोई उसे खाते हुए न देख ले। मेरे सामने के कुर्सियों की क़तार में एक पर वह भी बैठी हुई थी। अन्य कुर्सियों पर कई अन्य लोग बैठे थे। कुर्सियाँ एक दूसरे से चिपकी हुई थीं पर लोग दूर-दूर नज़र आ रहे थे। कोरोना वाली सोशल डिस्टेन्सिंग थी या लोग ही कम थे समझ नहीं पाई मैं क्योंकि कई साये अग़ल- बग़ल भी दिख रहे थे। मैंने सोच लिया कि वे एक ही परिवार के होंगे। उसने और एक मुट्ठी मुँह में डाला और बाएँ हाथ से काले रंग के बैग में परेशान सी कुछ ढूँढने लगी। अगले ही पल फ़ोन हाथ के साथ बैग से निकलकर कान से चिपक गया। पहले होंठ बिसूरेफिर आँखें गीली हुईं। दाहिने हाथ के पिछले हिस्से से वह आँखों को तबतक पोछने की कोशिश करती रही जबतक फ़ोन कान पर चिपके रहे। बीच-बीच में होंठ भी गोल होते हुए दिख रहे थे और फुसफुसाहट की आवाज़ भी आ रही थी पर बात समझना मुश्किल था। यहाँ भाषा और दूरी दोनों ही मेरी जिज्ञासा बढ़ा रहे थे। मैं जबतक कुछ समझने की कोशिश करूँ तबतक फ़ोन कान से निकलकर वापस बैग में क़ैद हो गया और हाथ चावल को फिर से गोल करने लगा। उसने और एक मुट्ठी मुँह में डाला। तभी पीछे के गेट से एक स्त्री आई और बग़ल की ख़ाली कुर्सी पर बैठ गई। हाथ अनायास ही रुक गए उसके। कुछ बोला उसने पर मैंने सुना नहीं। आँखों की बूँदें गाढ़ी होती देखती रही मैं। उसने पेपर प्लेट को मोड़ा और कुर्सियों के बाद कोने से सटे डस्टबिन में डाल आई। मानो किसी अनचाही वस्तु से निजात पा ली हो। बैग से कपड़ा निकालकर तत्काल रूप से हाथ भी पोंछ ली। मुड़ी-सिकुड़ी चुन्नी ने आँखों को सुखाने में मदद की। वह उससे तबतक आँखें पोंछती रही जबतक आँसू आँखों में न सिमट गए।

यह वही स्त्री थी जिसने कल मुझे मेरा फ़ोन चार्ज करते हुए देख तेलुगु में पूछा था। “मैडम कोंचम चार्जर ईस्तरा?फोन डिस्चार्ज अईंदी।” जिसके अर्थ का अनुमान मैंने इन शब्दों से लगा लिया था कि “मैडम फ़ोन का चार्जर देंगे क्या, फ़ोन डाउन है मेरा।” और मैंने उसके हाथ में फोन देखकर टूटी-फूटी तेलुगु में जवाब दिया था जिसका अर्थ था कि “ये आइफ़ोन का चार्जर है आपके फ़ोन में नहीं आएगा।” उसने अपना फ़ोन देखा, फिर मेरा चार्जर और पलट कर लाचार-सी अपनी कुर्सी पर बैठ गई थी। उसके बगल में एक अधेर उम्र का पतला सा आदमी भी था जिसका फोन पहले ही चार्जिंग पर लगा हुआ था और जिसे वह बार-बार उठकर देख रहा था। फ़ोन रिंग होने पर भी बग़ैर चार्जर से निकाले वह कान में लगा लेता। एक प्लग पर उसने पूर्णतः अपना अधिकार जमा लिया था। इसकी वजह का अनुमान मैंने उसकी मजबूरी से आंक लिया जो फ़ोन में बैट्री की ख़राबी हो सकती थी।

मेरा मानना था कि अपोलो जैसे हॉस्पिटल के आई सी यू वार्ड के वेटिंग हॉल में सिर्फ़ ‘बड़े लोग’ यानि अमीर लोग ही होते हैं। वह बड़े लोगों मेंथी या नहीं मुझे नहीं पता परंतु उम्र 40 के आस पास रही होगी। वहाँ बैठे अधिकतर चेहरे शांत और आँखें उदास थीं। हवामें एक अजीब सा भारीपन होता था जिसे मिलने जुलनेवालों की सांत्वना भी हल्का नहीं कर पाती थी। हंसी कभी-कभार यदि उधर से गुजर भी जाती थी तो खोखलेपन को नहीं छिपा पाती थी। पिछले दो दिनों से उसके हाव-भाव को मैं पढ़ने की कोशिश कर रही थी। एक दिन साड़ी और दूसरे दिन सलवार क़मीज़ में नज़र आई थी वह। ऐसे कई लोग वहाँ थे जो किसी अपनों के लिए या अपनों की वजह आए हुए थे। कई बार उनके यहाँ होने की वजह जानने की उत्सुकता होती। मन करता कि पूछ लूँ कि उनके अपने किस स्थिति में हैं वहाँ। परंतु तथाकथित मानसिकता कि दूसरों के प्रॉब्लम में टांग अड़ाना असभ्यता की निशानी है, मैं चाह कर भी पूछ नहीं पाई। शायद सभ्यता का नया पाठ उसने नहीं पढ़ा था और पूछ लिया था मुझसे, तेलुगु में ही, “कौन है यहाँ पे आपका….” मैं जवाब दे पाऊँ उससे पहले ही उसने और एक सवाल दागा, “क्या हुआ है?” मैंने कह दिया कि एक्सीडेंट हुआ है मेरे भाई का।

“मेरे पति का भी एक्सीडेंट ही हुआ है।”

यह कहकर अनजान के मामले में टांग अड़ाने की असभ्यता से बचा लिया था उसने मुझे। अब मैं आगे और जानने को उत्सुक थी। वह कहती गई कि उसके पति के सिर में चोट लगी है। रात को सेक्यूरिटी की ड्यूटी करके वापस पैदल आते वक्त किसी डी.सी.एम. वाले ने ठोक दिया था उसे। डॉ कहते हैं दारू पीया हुआ था। कितनी बार समझाया पर सुने तब न, भगवान जाने दारू कौन बनाया। दारू के लिए मरद लोग किसी को भी दाव पर लगा सकता है। इसने तो अपनी ज़िंदगी को ही दाव पर लगा दिया। दो दिनों से न्यूरो आइ.सी.यू. में है और अभी तक बेहोश पड़ा हुआ है.., “कहते हैं ऑपरेशन करना पड़ेगा मैडम, 4 लाख रुपया जमा

करने को बोल रहे हैं, कहाँ से लाऊँगी मैं...।" कहते हुएकई बार उसकी आँखें भरी थीं और जबान भी लड़खड़ाई थी। तभी फ़ोन बजा था उसका और वह बग़ल हो गई थी।

अगले दिन फिर देखा था मैंने उसे। मुझे लगा कि वह फिर मुझसे बात करेगी। अपनी कथा और वर्तमान के हालात मुझे बताएगी। मेरा हाल चाल जानना चाहेगी। पर उसने कुछ नहीं पूछा। आँख की पपनियाँ सूजी हुई थीं। आई.सी.यू. के सिक्युरिटी से उसने कुछ पूछा था पर वह मना कर दी थी। आकर बैठ गई थी चुपचाप। दोनों पैरों को मोड़कर समेट लिया था कुर्सी में। कई लोग आते रहे और मिलते रहे। कभी सूखी कभी गीली आंसुओं के बीच मुस्कुराहटें भी निकलती रहीं।

हमारे समाज की सबसे बड़ी विशेषता है कि कुछ करे या न करे पर सांत्वना देने में हम कभी पीछे नहीं रहते। छोटी-मोटी बीमारियाँ सांत्वना से ही ठीक हो जाती हैं। एक मरीज के पीछे पूरा ख़ानदान हमें हॉस्पिटल में नज़र आता है। ठीक उसी तरह जैसे एक को छोड़ने के लिए कई लोग स्टेशन पर इकट्ठा हो जाते हैं। जीवन के आख़िरी क्षण तक हम साथ देने में विश्वास करते हैं। यह बात अलग है कि आपसी मनमुटाव भी कम नहीं होते। दोस्त को दुश्मन बनते भी देर नहीं लगती। प्यार और नफ़रत दोनों की चरम सीमा हम देख सकते हैं यहाँ। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जरूरत के वक्त दुश्मनी को हावी नहीं होने देते और मदद के लिए सामने खड़े हो जाते हैं। अपनी परवाह तो हम करते ही हैं दूसरों की खबर लेना भी नहीं भूलते। आज के युग में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर और न्यूक्लीअर फ़ैमिली के नाम पर हमारे यहाँ भी लोगों की दुनियाँ सिमटने लगी है। मानसिकता ऐसी हो रही है कि दूसरों की खोज खबर रखने वालों को दूसरों की ज़िंदगी में टांग अड़ाना कहा जाने लगा है। जहाँ ऐसी मानसिकता की हवा नहीं लगी है उन्हें छोटी सोसाइटी माना जाता है। शायद वह भी इस तथाकथित छोटी सोसाइटी से ही संबंध रखती थी।

अगले दिन फिर से मेरी नज़र उसे ढूँढने लगी। आई.सी.यू के वेटिंग एरिया से अस्पताल का मेन गेट से लेकर इमर्जेन्सी वार्ड के द्वार भी साफ नज़र आते थे। वहाँ बैठनेवालों के लिए दिन भर एम्बुलेंस की सायरन सुनना, मरीज़ों का उतरना और चढ़ना देखना मजबूरी सी बन जाती है। उन्हें देखकर आप स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं या बदकिस्मत यह आपकी वर्तमान परिस्थिति पर निर्भर करता है। मस्तिष्क सकारात्मक और नकारात्मक सोचों के बीच का द्वन्द्व अनवरत झेलता रहता है। मरीज का स्वस्थ होकर बाहर निकलना मन में आशा और संतोष जगाता है। मेरा भी मन कुछ ऐसी ही परिस्थिति से गुजर रहा था। वेटिंग एरिया में बैठे-बैठे मैं ढूँढने लगी थी उसे हर उन मरीज़ों के साथ जो गेट से बाहर निकल रहा था। मन में सवालों का तांता लगा हुआ था कि क्या हुआ होगा उसके पति को? क्या पैसे का जुगाड़ कर पाई वह? सर्जरी हुआ उसका या नहीं हो पाया? फिर दिमाग़ ने दिल को समझाने की कोशिश किया कि अपोलो जैसे अस्पताल में जो आता है वह कुछ न कुछ जुगाड़ कर के ही आता होगा। जुगाड़

नहीं होगा तो सरकारी अस्पताल में जाएगा, यहाँ आएगा ही क्यों। मानसिक द्वंदों के बावजूद जब मन किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा तो ख़ुद्दारी को बगल में रखकर मैंने आइ.सी.यु. के सेक्युरिटी से पूछ ही लिया-

"वो एक लेडी आईं थीं जिनके हसबैंड का एक्सीडेंट केस था और जो एन.आई.सी.यु. में थे वे शिफ़्ट हो गए क्या? क्या हुआ उनका? सर्जरी हुई?" मैंने अवसर देखकर कई सवाल गाड़ दिए।

क्षण भर के लिएसेक्युरिटी ने मुझे ऐसे देखा मानो कह रही हो "इतनी भी क्या पड़ीहै इन्हेंऔर मुझेकोई और काम धाम नहीं है जो सबका हिसाब रखती बैठूँ। इतने सारे पेशेंट हैं, आइसीयू भरा पड़ा है ऐसे में किसी एक के बारे में याद रखना आसान है क्या!" परंतु वह मुझे भी कई दिनों से चक्कर मारते हुए देख रही थी इसलिए उसे मेरे साथ कठोर होते शायद नहीं बना। उसने इतना कहा "क्या करते जान के मैडम एक तो हमें अलाउ ही नहीं है कि मरीज़ के बारे में किसी को बताए और यदि बता भी दूँ तो आपको तकलीफ ही होगी। नक्को पड़ो इन झंझटों में।"

तभी एक वार्ड ब्याय तेज कदमों से हाँफते हुए आया। "बेड नम्बर 10" सेक्युरिटी को कहा। सेक्युरिटी ने झट से दरवाज़े के बग़ल वाली स्विच को दबाया और आधी खुली हुई दरवाज़ा पूरी तरह से खुल गई। लम्बी सी कॉरिडोर में लिफ़्ट से एक स्ट्रेचर उतरा। दो लड़के आगे और दो लड़के पीछे से उसे ढकेल और खींच रहे थे। एक वार्डबॉय सिरहाने की ओर से ऑक्सीजन का सिलिंडर पकड़कर पहिए के सहारे चला रहा था और एक इंसान बैलून को फुलाकर फेफ़रे में हवा भरने की कोशिश कर रहा था। सफ़ेदी में लिपटा शरीर का सिर बैंडेड से पूर्णतः ढँका हुआ था। आधा चेहरा भी पट्टियों के घेरे में था। मैंने प्रयास नहीं किया उसे पहचानने की। तभी सबके पीछे हाथ में फ़ाइल का झोला लटकाए हुए वह चलती हुई दिखाई पड़ी। चेहरा मास्क के पीछे था पर आँखों में ख़ुशी साफ़ झलक रही थी। इस ख़ुशी का अंदाज़ा मैंने ऑपरेशन की कामयाबी से लगा लिया और मेरे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा "थैंक गॉड!" मेरे हावभाव देखकर सेक्युरिटी को बर्दाश्त नहीं हुआ या वह मुझे खुशफहमी में नहीं रखना चाह रही थी भगवान जाने। उसने धीरे से कहा, "ऑपरेशन तो हो गया मैडम लेकिन पेशेंट कोमा में है। कब बाहर निकलेगा कोई ठीक नहीं है। डॉ साहब लोग बात कर रहे थे। कोमा का पेशेंट ज़िंदा लाश से अधिक नहीं होता आपको पता ही होगा" मैं देखती रह गई अवाक् सी उस स्त्री को फिर से जो शराबी पति को ज़िंदा लाश के रूप में पाकर निहाल हुई जा रही थी।

वक्ता में हों इतिहासकार, दार्शनिक, वकील व पत्रकार के गुण: प्रोफेसर सुभाष सैनी

5 मार्च 2023 को कुरुक्षेत्र में 'स्वतंत्रता-समानता-बंधुता मिशन, भारत' की कार्यशाला हुई जिसमें 25 के साथियों ने भाग लिया। इसमें तीन सत्र हुए। पहले सत्र में अपने लक्ष्य और उसके अनुकूल जनसंवाद करने की तैयारी को लेकर सैद्धांतिक किस्म की बात हुई। दूसरे सत्र में तीन गतिविधियों के संबोधन व परिप्रेक्ष्य के संबंध में चर्चा हुई तथा तीसरे सत्र में कार्य-योजना पर विचार हुआ। अभी प्रस्तुत है पहले व दूसरे सत्र की संक्षिप्त रिपोर्ट :-

प्रोफेसर सुभाष सैनी - स्थानीय स्तर पर कार्य कर रहे जन संगठनों को निरंतर बोद्धिक इनपुट की जरूरत होती है। पहले से काम कर रहे संगठनों को सम्मान देना, उनके काम को आगे बढ़ाने, एक राष्ट्रीय संगठन से जोड़ना और उनका समन्वय करना हमारे मिशन का उद्देश्य है।

श्रोताओं में बहुत कम पढ़े लिखे, ज्यादा पढ़े लिखे, संस्कृति का फर्क से कई स्तर होते हैं। ऐसे मिश्रित समूह से कैसे संवाद किया जाए यह चुनौतीपूर्ण है। जनसंवादक के पास

इतिहासकार की दृष्टि हो। इतिहासकार चीजों को संदर्भ देता है। विषय को इतिहास व वर्तमान से जोड़ता है। ऐतिहासिक शक्तियों के अंतरविरोधों, टकराहटों, संघर्षों और स्वार्थों पर ध्यान देता है और उन्हें उजागर करता है।

जनसंवादक के पास एक दार्शनिक की एक परिप्रेक्ष्य देता है, भविष्य में संभावानाओं का संकेत करता है। टुकड़े-टुकड़े अनुभवों को एक विचार के साथ जोड़ता है। दार्शनिक की नजर है तो लोगों की आशंकाओं व जिज्ञासाओं को शांत कर पायेगा। जनसंवादक में एक वकील के गुण होने चाहिए। पक्ष और विपक्ष दोनों को ध्यान में रखता है और मुकदमा बनाता है। विषय के पक्ष और विपक्ष में तर्कों व तथ्यों की सूची बनाएं। इससे अपना पक्ष मजबूत होता है, अपनी कमजोरी, विरोधाभास में समझ आते हैं।

जनसंवादक में एक साहित्यकार की तरह संवेदनशीलता और भावना के स्तर पर दिल को छू लेने वाली भाषा होनी चाहिए। जनसंवादक में पत्रकार की तरह विवरण देने, रिपोर्ट करते हुए विश्लेषण करने की क्षमता होनी चाहिए। जनसंवादक में एक धर्मगुरू या नेता के गुण हो। जो अपने संवाद में एक नौतिक संबल, हिलिंग टच दे सके। कोई उसकी मदद करने वाला है यह भरोसा दिला सके।

अपने विषय को संप्रेषित करने के लिए जनसंवादक अनेक उदाहरण देता है, वे जन जीवन से जुड़े हों और उनकी प्रकृति ऐसी हो कि जिसके प्रति सब की श्रद्धा हो। जो सबको एक स्तर ले आएं। जैसे प्रकृति, बच्चे आदि। इनके उदाहरण होंगे तो बात जल्दी व सब को स्वीकार होने में सुविधा होगी।

भ्रमित करने वाले जनसंवादक दो असमान श्रेणियों में तुलना करते हैं। प्राकृतिक प्रक्रियाओं को सामाजिक संरचनाओं साथ जोड़ देते हैं और इसमें ही लोग फंस जाते हैं। जैसे कि समाज में गैर-बराबरी का औचित्य ठहराने के लिए वे कहेंगे कि - हाथ की पाँच उंगलियां बराबर नहीं होती—सुनने में ये सब को ठीक लगेगा। लेकिन सबके हाथों में पाँच उंगलियां होती है, सबके दो-दो हाथ हैं – ये बराबरी है। इसको चिह्नित करने की जरूरत है। इस तुलना-पद्धति को पहचानने की जरूरत है।

सही-गलत की हमारी कसौटी क्या होगी - स्वतंत्रता, सामनता, बंधुता, न्याय और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र। गांधी का जंतर – जो अंतिम व्यक्ति के हित में वह सही, उचित, नैतिक है। समाज सुधारकों. शहीदों, महापुरुषों से कुछ चीजें लें और कसौटी बना लें। हर विषय व विचार को उपरोक्त कसौटियों पर कस कर देखना चाहिए।

जनसंवादक में को व्यक्तियों के उदाहरण देने, हिंसक, भेदभावपूर्ण, किसी समूह-वर्ग की आस्था-भावना पर ठेस पहुंचाने वाले, बदले की भावना व आक्रोश की शब्दावली का

प्रयोग नहीं करना चाहिए। ऐसी एक बात, एक वाक्य, एक शब्द समस्त संवाद का प्रभाव समाप्त कर सकता है।

अच्छे जनसंवादक का लक्षण है कि वह अपने श्रोताओं में में आशा जगाए। संवाद हंसी-व्यंग्य हो जिससे जीवन में आशा जगे। भय का महिमामंडन ना करें, श्रोताओं में भय ना फैलाएं। हमारे संबोधन में आशा रहनी चाहिए.

कम्युनिकेशन के सिद्धांतों में भी यही बात है कि एक बोलने वाला है, दूसरा सुनने वाला है, उनके बीच में एक संदेश है, यह संदेश किसी माध्यम के जरिए बोलने वाले से सुनने वाले तक जाता है।माध्यम की वजह से वह संदेश कितना सही पहुंचता है और उसका क्या प्रभाव पड़ा है।श्रोता और वक्ता के बीच जो संदेश है उसमें बाधाओं को दूर करने के लिए शब्द चयन, भाव-भंगिमाएं, विषयानुकूल आवाज का उतार-चढ़ाव, श्रोताओं की मनःस्थिति आदि अनेक बातें हैं, जिनका ध्यान रखना जरूरी है।

बहुत सुस्त व उदासीन श्रोताओं में भी कुछ श्रोता जरूर होते हैं जो आपको ध्यान से सुन रहे हैं। उनको चिह्नित करो और उनको केंद्रित करके संवाद करने से वक्ता की ऊर्जा बनी रह सकती है।

टीआर कुंडू- श्रोता और वक्ता के बीच में संदेशमें कई बार कम्युनिकेशन लोस हो जाता है। जो कहना चाह रहे हैं उसमें वैचारिक स्पष्टता हो। हर चीज का कोई संदर्भ होता है। प्रसंग होता है। संदर्भ बदलने के साथ कई बार अर्थ भी बदल जाते हैं। उसकी रिलवेंस हो, उसके अनुरूप हो। हमारे सांस्कृतिक व्यक्तित्वों नानक, कबीर आदि के जरिए बातें कहने से असर पड़ता है। वर्बल लैंगवेज व बाडी लैंगवेज के बीच समन्वय होना चाहिए। कहने और शरीर के अंदर मेल हो। बाडी लैंगवेज में आखों और हाथ का सबसे अधिक प्रयोग होता है। आंखों में आँख डाल कर बैठना चाहिए। वैचारिक स्पष्टता होगी तो वक्ता लेक्चर स्टेंड से भी आगे हो जाता है।

सुरेंदर पाल- कम्युनिकेशन पर चर्चा कर रहे हैं – दो तरह की है – बोल कर, लिख कर। हम किस परिवेश में बात कर रहे हैं। अगर हम उसको नहीं देख पाए तो वह सही तरीके से नहीं पहुंच पाएगी। परिवेश के प्रति संवेदना होनी चाहिए। हर चीज की प्रतिक्रिया, आलोचना करना, उसकी भाषा सख्त करना – यह ठीक नहीं है। सोशल मीडिया पर खासतौर से- इस से हम बात नहीं कर पाते, सही संदेश नहीं जा पाता। जांचना चाहिए कि आपकी शब्दावली क्या है। संदेश प्रभावी हो इसके लिए जरूरी है कि वह आम जन मानस तक जुड़ा होना चाहिए।

जयपाल- पहले यह बात स्पष्ट होनी चाहिए। स्वतंत्रता-समानता-बंधुता को स्थापित करने के लिए क्या करना चाहते हैं, क्यों करना चाहते हैं, हमारा अपना मक्सद क्या है। सवाल ये

है कि आप का सामाजिक अनुभव क्या है, समाज से कितने जुड़े हैं, कितना अध्ययन किया है। यह सब सामाजिक सरोकार है - स्वतंत्रता-समानता-बंधुता। इस पर स्पष्टता व प्रतिबद्धता जरूरी है।

अरुण कैहरबा- समाज में बहुत विविधता होती है। उसको मद्देनजर में बात रखनी चाहिए। उस गांव की तासीर क्या है, राजनीतिक रूझान क्या है। लोग कितने सक्रिय है, कैसे रियेक्ट करते हैं, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है। समुह को अनुमान लगाते हैं, लेकिन कंटेट के बेसिक बिंदू क्या हो – इस से पहले उपरोक्त आंकलन करना चाहिए।

संवाद में रचनात्मकता जरुरी है। रिपिटेशन से बचने की जरूरत है। पूर्व वक्ताओं ने क्या, किन बिंदुओं पर फोकस किया है। नयापन क्या क्या हो सकता है। क्या क्या क्रिटिवेटी समाहित कर सकता है। भाषा के जरिये क्या जुड़ाव महसूस कर सकता है। विनम्रता अंदाज क्या क्या हो। संबोधन में आक्रामकता और भयांक्रातता नहीं, बल्कि उत्साह पैदा करना, आशा का संचार पैदा करना, खुद भी उत्साहित होना यह बहुत महत्वपूर्ण है।

अंजु- विषय से भटकें नहीं इससे दिशा बदल जाती है। इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। कोई प्रश्न से प्रभावित होकर विषय न बदलें। भाषा कई बार बहुत कठिन शब्दों का इस्तेमाल होता है। कई तरह के सुनने वाले होते हैं। हमारा भाव उस तक नहीं पहुंचता अगर भाषा कठिन है तो।

तेलूराम- किसी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा क्या है। हमारा टार्गेट क्या है, उसको आगे रखना चाहिए। स्थानीय समस्याओं पर स्थानीय लोगों के साथ बात चीत करना। यह हमारा अनुभव है।

नरेश दहिया- कई लोग माईक पकड़ू होते हैं। सारी बात को खत्म कर देता है। ज्यादा समय न लें। जिस विषय पर बोल रहे हैं उस को जीना – अगर उसको जीओगे तो उसको दूसरों के सामने व्यक्त कर पाओगे।

विरेंद्र गन्नौर- जन समूह को संबोधित करते समय – वह जन समूह कैसे है, उसकी भाषा क्या है, मां बोली के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। वक्ता की भाषा महत्वपूर्ण हैं। अलग-अलग धर्म, वर्ण, जाति के लोग जुड़े होते हैं उसको कट करना नहीं चाहिए, हमारे अंदर सब के लिए जगह होना चाहिए।

नरेश सैनी- वक्ता का समय कितना होना चाहिए। मानव स्वभाव कहते हैं चालीस मिनट तक होता है। इसके बारे में कुछ बताया जाना चाहिए.

राजकुमार जांगडा- झूठ का सहारा न लेकर सत्य-तथ्य बताए जाने चाहिएं। भाषा और आवाज का ध्यान रखना चाहिए। स्थानीय भाषा का इस्तेमाल करें। एक टोन न हो। उतार चढ़ाव होना चाहिए। 20 मिनट में विषय को समेटना चाहिए। मुवमेंट करते हुए बात करें

अगर जरूरत है। आंखों में आंखों डाल कर बात करना, अलग अलग लोगों को देख कर बात करनी चाहिए।

धीरज (टोहाना) - वक्ता को अच्छा श्रोता होना चाहिए। एक्टिव लिशनिंग होनी चाहिए। अगर वह अच्छा सुनेगा तो बोलेगा भी अच्छा। माहौल – परिवेश जब बोलते हैं तो उसका माहौल बनाना चाहिए। कुछ जयकारे से शुरू करते हैं, कुछ और करते हैं। आपकी बाडी लैंगवेज क्या है, इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

गीता पाल- भाषा बहुत महत्वपूर्ण हैं। परिवेश के हिसाब से बात करनी चाहिए। केवल भाषण देने से काम नहीं चलेगा, हमारा लोगों से कनेक्ट करने की बात है। लोगों के बीच में जाना होगा। इसके लिए केवल भाषण देना जरूरी नहीं है। बैठने का, चाय का बाकी जगह, किस कैसे मिल सकते हैं। भाषण से पहले, भाषण के बाद।

विकास- इंटरेश्टिंग बनाकर बात करनी चाहिए। लोक भाषा के मुहावरे, लोकोक्तियां होनी चाहिए। महापुरुषों के उद्धरण होने चाहिएं। अपने विषय से भटकाव ना हो।

अभिषेक - मैं सीखने आया हूं। बुजुर्गों से मिलता हूं, अपनी भाषा को बिल्कुल आम शब्दों में होनी चाहिए, उनको समझ में आनी चाहिए।

अविनाश सैनी- हमारा काम मुझे लगता है पक्ष का निर्माण। इस पर हमारा ज्यादा ध्यान होना चाहिए। दो तीन तरह के लोग होंगे, धुर विरोधी और धुर पक्ष वाले। यहां हम एक विचार से सहमत हैं। बिल्कुल बड़ी संख्या है जो हाशिये पर खड़े हैं – हमारा लक्ष्य हाशिये वाले हों, जो अपना पक्ष नहीं चुन पाए। सहजता सबस से जरूरी चीज है। शब्दों पर बहुत ज्यादा जोर देना, कृत्रिमता आ जाती है। सच के नजदीक ही बात करनी चाहिए।

स्थानीयता बहुत जरूरी है, हर चीज में। संदर्भ बहुत विशिष्ट होने चाहिए। आत्मविश्वास हो, लेकिन अति आत्मविश्वास नहीं होना चाहिए। लोगों को कुछ नहीं पता यह नहीं समझना चाहिए। तुम कि जगह हम का इस्तेमाल होना चाहिए। खुद को उसमें शामिल करना चाहिए। अनुभव सुनाएं, ज्ञान नहीं। निराशा नहीं फैलानी चाहिए। तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता आदि दोषारोपण से बचना चाहिए। अपनी-अपनी परिस्थितियों में वह क्या कर रहे हैं उस पर भरोसा करना चाहिए। लोगों की बातों को तव्वजो देना जरूरी है। ध्यान खींचने वाले शब्द हमारे पास हों, जिस से चीज जुड़ जाए, चाहे एक लाइन की हो। अपनी मां बोली के ज्यादा से ज्यादा शब्दों का इस्तेमाल करना चाहिए। कहां जाकर कैसी भाषा का इस्तेमाल होना चाहिए।

दूसरा सत्र - तीन अभियान

आने वाले तीन अभियान या किसी भी तरह की गतिविधियां कैसे हमारे मिशन को आगे बढ़ा सकते हैं। हम सभी तरह की गतिविधियों को इन उद्देश्यों के साथ कैसे जोड़ें। किसी भी तरह के कार्यक्रमों में इन विषयों के जरिए हमें कैसे हस्तक्षेप कर सकते हैं। हम कैसे किन तरीकों से इस में उतरें। हमारे पास मीटिंग में तीन कार्यक्रमों की योजना है।

23 मार्च शहीदी दिवस, 11 अप्रैल फुले जयंती, 13 अप्रैल जलियांवाल बाग़ हत्याकांड व 14 अप्रैल बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर जयंती

10-11 मई – 1857 का पहला स्वाधीनता आंदोलन। त्याग और कुर्बानी की बहुत बड़ी घटना। साम्राज्वयादी शोषण, लोकतांत्रिक प्रक्रिया, धार्मिक एकता की प्रतीक है। इन घटनाओं ने पूरे भारत को प्रभावित किया। नवजागरण को प्रभावित किया। इन सबका निचोड़ है संविधान की प्रस्तावना। अगर इन धाराओं को माइनस कर दें तो इस संविधान में कुछ नहीं होना था। प्रतिक्रियावादी शक्तियां इनको बदल देना चाहती हैं।

टी.आर. कुंडू- हमारे तीन मुद्दे हैं तीनों फ्रांसीसी क्रांति की उपज है। ये इंसान की अंदरुनी इच्छा है। क्यों दास प्रथा, राजशाही के खिलाफ क्रांतियां हुई। यह हमारी प्राकृतिक जरूरत

है, ये हमारी भूख है – स्वतंत्रता। राजनीतिक लोकतंत्र से सामाजिक लोकतंत्र होगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ। हमारे महापुरुषों ने भी ये बात कही है।

हमारे पास सब से बड़ा हथियार है तर्क – वैज्ञानिक सोच – तर्कशील सोच होगी तो हमारा समाज इन मूल्यों को अपना पाएगा। नव जागरण हमने किया था वह पश्चिम में बाद में आया है। धर्म और विज्ञान के बीच का संघर्ष 14वीं-15वीं शताब्दी में हुआ लेकिन हमारे यहां यह संघर्ष बहुत पुराना है। लेकिन हमारा समाज में तर्क की प्रधानता नहीं हो पायी। इसका प्रमाण है बौद्ध धर्म भारत में क्यों नहीं फैला, जहां गया वहां उन्नति हुई।

ब्राह्मणवाद ने क्यों इसको विकसित नहीं होने दिया। यह व्यक्ति के विवेक के बदलने पर संबंध है। समाज हमारी कल्पना का मूर्त रूप है। हमने ही इस समाज को बनाया है हम ही इसको बदल सकते हैं। यह तब बदलेगा जब हमारी सोच बदलेगी। हमारे आदर्शों के विचारों को फैला कर हम इसको बदल सकते हैं।

अविनाश सैनी- जो वैचारिक बात की है यह आधार है। इसमें क्या जोडूं। भगत सिंह के बारे में हमने ज्यादा पढ़ा उसके बारे में हम ज्यादा बोल सकते हैं। महात्मा बुद्ध के काम हमारी स्मृतियों में नहीं है। हमारी संस्कृति में भी नहीं रहा है। कम पढ़ कर अगर हम बात करें तो हमारे ऊपर बहुत सारे सवाल आएंगे। उसको अधिक पढ़ने की जरूरत है। बुद्ध वह पहले व्यक्ति है जिसने कहा ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं है।

अहिंसा की पंरपरा को भी हमें शामिल करना चाहिए। वर्ण व्यवस्था को लेकर फुले और अंबेडकर ने जो किया उसको जोड़ना चाहिए। प्रगतिशील धारा लंबे समय तक इसको खारिज करती रही है। जब आजादी का आंदोलन चल रहा था तो यह आरोप लगा है कि अंबेडकर आजादी की बात नहीं करते, जाति की क्यों बात करते हैं। उसके सूत्र हमारे बीच हैं लेकिन इनके अध्ययन की जरूरत हैं। जैसे फुले अंग्रेजों का सहारा ले रहे थे। आर्यभट्ट का सारा साहित्य विदेश चला गया है। वैज्ञानिकों के काम कहा गये। बुद्ध को भगवान बना दिया। जिन लोगों ने भगवान का विरोध किया, वर्णव्यवस्था का विरोध किया – इन अंतरविरोधों को समझना जरूरी है।

मनजीत भोला- समाज कोई नैसर्गिक नहीं है, हम इसको बदल सकते हैं।

विकास- सत्संग, डेरे सारे इन्हीं भक्तिकाल को इस्तेमाल कर रहे हैं। कबीर को सबसे ज्यादा इस्तेमाल करते हैं। हम सबके साथ इस पर बात करेंगे। उनको साथ में जोड़ेंगे।

गीता पाल- हम धर्म और संस्कृति की बात कर रहे हैं। इस पर काम करना बहुत जटिल हैं क्योंकि जड़ता बहुत है। हम तर्क के साथ अच्छी चीजों को बोलना चाहिए। किन किन महापुरुषों को कहां बोला, हम विरोधात्मक न बोलें। हम कबीर, नानक आदि पर फोकस

करें। उनके बीच में भी गहरी चीजें छुपी हुई हैं। हम इंटरकास्ट मैरिज में कैसे काम करें, इसको व्यवहार में लेकर आएं। इसके साथ-साथ रचनात्मक काम करें।

धीरज गाबा - प्राचीन भारत के इतिहास का इस्तेमाल करना चाहिए। वह इसका इस्तेमाल करते हैं। वह इसको गलत इस्तेमाल करते हैं। हम साइंस में आगे थे तो हम पिछड़े क्यों। चार्वाक का जिक्र भी हमें करना चाहिए। जिसका साहित्य ही गायब है। हमारी पंरपाराएं थी, जब एक परंपरा थोंपी तो हमारा विज्ञान पीछे हटा। फिर हमें वापिस ले जाया जा रहा है। जैनों पर, कबीर, बुल्ले शाह पर बात करें। रणनीतिक रूप से पढ़ना, नीचे से क्या सवाल आ रहे हैं। इस पर बुद्ध का सत्र अलग से किया जाना चाहिए।

राजकुमार जांगड़ा- मिशन का कामयाब करने के लिए पढें। समझे जाने। अंबेडकर के प्रति नफरत भरी हुई हैं। इसको खत्म करना चाहिए। लोगों को समझाना चाहिए।

नरेश सैनी- स्वतंत्रता-समता-बंधुता मिशन के लिए हम इकट्ठे हुए हैं इसकी जरूरत इसलिए पड़ी की सोच में बदलाव किया जा सके। जो चोर और साध के बीच के अंतर को नहीं समझ पा रहे हैं। हमें बुद्ध, अंबेडकर, फुले का रास्ता दिखता हैं। मिलावट को पहचाना चाहिए। सत्य की धारा को पहचानी चाहिए। भगत सिंह का असर युवाओं में बहुत मजबूत है। आसानी से वह पैठ बना जाता है। बुद्ध को कम जानते हैं। अंबेडकर और भगत सिंह को अलग-अलग कर के देखा जा रहा है।

विरेंद्र गन्नौर- तीनों विचारधाराएं चली आ रही है। वर्तमान में सबसे जरूरी है उनके जीवन मूल्यों के बारे में बताना होगा। अगर उनको इसका नहीं पता तो वह महापुरुषों को नहीं समझ पाएंगे। यह मूल्यों को बचाने की लड़ाई है। वर्तमान परिपेक्ष्य में जोड़ कर बताना होगा। आदमी आदमी को बचाता है कोई भगावन नहीं।

नरेश दहिया- दो धड़े हैं जिसने खूब अध्ययन किया है। कुछ कम किये जा रहे हैं। जिसने ज्यादा पढ़ा है उस पर विशेष ध्यान देने की बात है। भगत सिंह की बात आते ही यह इमेज बनी है फिर आना होगा, मूछों पर तांव – हमें उसकी स्वतंत्रता, समानता, बंधुता की इमेज हमें पेश करनी होगी। इसके लिए पढ़ने की जरूरत है।

राजेश कासनिया- कोई गांव ऐसा नहीं जहां अंबेडकर, भगत सिंह की मूर्ति न हो। लेकिन किताबों पर बहुत कम बात होती है। अंबेडकर, भगत सिंह, गांधी के बीच बहुत सारे अंतरविरोध हैं। इनको हमें हल करना होगा।

अरुण कैहरबा- समाज के अंदर जो सकारात्मक पक्ष हैं उनको समझने का सवाल है। यह केवल सीखने-सिखाने का मामला नहीं है। गांव के अंदर बहुत सारे कारक हैं। हर तरह के विचार लिये लोग वहां पर मिल जाते हैं। यह मान कर न चले कि लोग शून्य नहीं है। उनकी पहचान करना हमारा मिशन हो। उन संगठनों को जोड़ने का काम हमें करना होगा। महापुरुषों

के अंदर अंतरविरोध दिखते हैं, लेकिन मूल्यों पर एकता है। इनको हमें प्रचारित करना होगा। लक्ष्य की एकता बड़ी बात है।

जयपाल- यह महसूस किया जा रहा है कि अकेले-अकेले लड़ाई नहीं लड़ाई जा सकती। एक तरह की सोच रखने वाले लोग एक नहीं हैं, वह भी एक नहीं है। आपस में एक मंच पर नहीं है। आपस में उनकी संयोजकता बन जाए। शायद ऐसा सुभाष जी ने सोचा, मुझे लगता है। यह समय की मांग है। इसको चलाने के लिए बहुत सारे तरीके साथियों ने बताएं हैं। तथ्यों का सहारा लेना है। हमारी समाज में विश्वसनीयता होनी चाहिए।

सुरेंदर पाल - तीन मूल्यों पर जो बात कही जा रही है जिस पर मिशन का एक फार्म बना है। ऐतिहासिक तौर पर सबसे मूल्य फ्रांस क्रांति का है। सम्राट को मारा गया। और तीन मूल्य पैदा हुआ। ये बरकरार रहे। ये उपजे क्यों, जिंदा क्यों रहे। यहां पर विचारधारा के विकास की बात आती है। हम भारतीय परंपरा में उसको बुद्ध, फुले, अंबेडकर, भगत सिंह से जोड़ते हैं। इनके अंदर आपसी अंतरविरोध हैं। फुले क्राउन की प्रशंसा करते हैं। अंबेडकर कभी स्वतंत्रता आंदोलन की पक्ष में नहीं खड़े हुए। उनके अंदर बहुत सारे अंतर हैं। राजाओं के साथ-साथ बुद्ध धर्म चला है। जब हम स्वतंत्रता-समता-बंधुता पर कैसे समेटे, कैसे सवालों को हल करें।

हमारे पक्ष में सबसे बड़ी बात है भारत का संविधान। उनके व्यक्तिगत जीवन तक बात न जाएं, मूल्यों की बात होनी चाहिए। कौनसे तबके ऐसे थे जिनकी जरूरतों से यह मूल्य पैदा हुए। अभिव्यक्ति की बात भी होनी चाहिए। पूंजी के विकास में जो बाधा है उसको जोड़ना चाहिए।

प्रोफेसर सुभाष सैनी- भारत के इतिहास के तीन युग है। एक बुद्ध का आंदोलन – पहले की गैर समतामूल्क बातों के खिलाफ, सामाजिक समता, सद्भाव, न्याय, शांति, सत्य, अहिंसा की बात करता है। यह आंदोलन बुद्ध के जन्म से नहीं, उसके बाद लंबे समय तक की है। डाकुओं से लेकर राजा तक को उसने प्रभावित किया है।

दूसरा भक्ति आंदोलन – पूरे उत्तर से लेकर दक्षिण तक यह कई सदियों तक आंदोलन चला है। सांप्रदायिकता विरोधी, जाति विरोधी। सैकड़ों संतों के नाम लिये जा सकते हैं। इसमें महिला संत है, पुरुष संत हैं। वर्ण व्यवस्था के खिलाफ है। क्यों रविदास को बेगमपुरा की कल्पना की जरूरत पड़ी।

तीसरा है नव जागरण आंदोलन व राष्ट्रीय आंदोलन – फुले दंपत्ति, अंबेडकर, भगत सिंह, सुभाष, गांधी आदि। भारतीय इतिहास के सारे प्रगतिशील आंदोलन इन तीन नारों के साथ हमारे पास हैं। इन मूल्यों को अगर हम केवल फ्रांस की क्रांति के साथ जोड़ते हैं तो यह हमारी भूल होगी। इसकी परंपरा हमारे देश के इतिहास में भी है। हमारी संस्कृति, रिवाजों,

भाषा, सभ्यता के अंदर भी है। भारत के इतिहास, परंपरा को कैसे विकृत करके पेश किया जा रहा है। भारत में एक परपंरा नहीं बल्कि अनेक हमारी परंपराएं हैं। भारत का एक ग्रंथ नहीं अनेक है। एक दूसरे के विरोधी भी हैं।

फुले और अंबेडकर के बारे में जो मिथ्या धारणाएं बुद्धिजीवियों ने बनाई हैं वह बहुत गलत हैं और सोच समझ कर बनाई गयी है। अंबेडकर स्वतंत्रता आंदोलन की धारा के अंदर हमेशा जुड़े रहे हैं। सब गतिविधियों का हिस्सा रहे हैं। वह राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा नहीं थे वह बहुत बड़ा झूठ है। सब धाराएं स्वतंत्रता को अलग-अलग भाग ले रहे थे।

वह अलग-अलग व्यक्तित्व थे। सत्य इस का सबसे बड़ा मूल्य है। सत्य का शोधन मुख्य चीज है। इस नेरेटिव को स्थापित करना है। मूर्तियों, इमेज की अपनी महत्व है, विचार पहली चीज है। अब मूर्ति है तो हम उसके विचारों को बढ़ाएं।ईश्वर और पाखंड पर बात करने की जरूरत है, धर्म और संस्कृति पर बात करने की जरूरत है। आंबेडकर ने बुद्ध को अपनाया लेकिन उसमें बाईस प्रतिज्ञाएं स्थापित की।

प्रगतिशील धाराओं को हमेशा कुंद करने की कोशिश की गयी है। नेहरू और अंबेडकर पर बात करनी है। कल्याणकारी स्टेट की कल्पना अंबेडकर की, लागू किसने किया नेहरू ने। क्या यह एकता नहीं हैं। जिस का मकसद तोड़ना है वह उसको अलग तरीके से पढ़ते हैं जिसका मकसद जोड़ना है वह अलग तरीके से पढ़ते हैं। तथ्यों को अलग नहीं किया जा सकता। यह सही है मुस्लिम राजाओं ने मंदिर तोड़े, लेकिन उसका कारण धर्म नहीं राजनीति था। मुसलमान राजा ने तो मस्जिदें भी तोड़ी।

गांधी पर पूरी डिबेट को सही परिप्रक्ष्य में रखना होगा। व्यक्तित्वों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा करके विवाद पैदा करना प्रतिक्रियावादी बुद्धिजीवियों का पेशा है। अंबेडकर के लेखन में घृणा नहीं है। बुद्ध, अंबेडकर, फुले को क्यों किसी ने नहीं पढ़ा। यह बुद्धिजिवियों का पूर्वाग्रह है जो इस धारा को देख नहीं रहा है। स्वतंत्रता-समानता-बंधुता की जरूरत सबसे शोषित तबके को जरूरत है। उनकी दृष्टि से इसको पढ़ने की जरूरत है। संविधान के जरिए कैसे भारतीय समाज ने अधिकार प्राप्त किये हैं।

पहले बाबा साहेब पर होने वाले कार्यक्रम केवल उनके जीवन संघर्ष तक सीमित थे आज उनके कार्यक्रमों में वर्तमान मुद्दों को उठाया जा रहा है। वह बहुत बड़े आंदोलन के तौर पर सफल हो रहा है। अंबेडकर को ही बुद्ध क्यो याद आए। बाकियों को क्यों नहीं। पहले से स्थापित तर्कों को इतिहास के बारे में उनको दोबारा ठीक से देखने की जरूरत है। पहले केवल साम्राज्यवाद विरोध से ही देशभक्त और अंग्रेजों के पिट्ठू कहना सही नहीं है। बाबा साहेब और भगत सिंह की फोटो सबसे पहले देस हरियाणा ने साथ में छापी थी, हमें कोई उनके अंदर विरोधाभास नहीं दिखाई देता है।

देस हरियाणा की वर्तमान स्थिति और भविष्य के कार्य

प्रस्तुति- गुरदीप भोसले

दिनांक 12 फरवरी 2023, शाम 7 बजे प्रोफेसर सुभाष चंद्र जी की अध्यक्षता में देस हरियाणा समिति की बैठक का ऑनलाइन माध्यम से आयोजन हुआ और बैठक का संचालन विकास साल्याण जी ने किया। बैठक में देस हरियाणा की वर्तमान स्थिति और भविष्य में कार्य करने की दिशाओं पर विचार-मनन किया गया। सभी ने पत्रिका के साथ काम करते हुए प्राप्त अनुभवों को साझा किया और पत्रिका के वैचारिक कार्य को कैसे सुदृढ किया जाए इसके लिए सभी सदस्यों की सक्रिय भागदारी रही। पेश है समिति की रिपोर्ट-

विकास साल्याण- गत समय में पत्रिका के 'आजादी की कविता', 'जोतिबा-सावित्रीबाई फुले पत्र-भाषण विशेषांक', तथा 'संविधान : सरल अनुवाद' तीन अंक निकाले गये हैं। हमारे पास कई पुस्तकालयों से कॉल्स आती हैं कि हमारे छात्र और अध्यापक इसे निरंतर पढ़ते हैं और इस पर विचार विमर्श भी करते हैं। हमारे पास पहली बार लाइब्रेरी में किसी किताब पर चर्चा हुई है। हम स्कूल और कालेजों में बिना सदस्य भी 50 प्रतियाँ भेज रहे हैं। यह एक बहुत सराहनीय प्रयास है। करीब पाँच कालेजों ने पंजीकरण के लिए फोन किये।

हमें भारत जोड़ो यात्रा में महाराष्ट्र के कुछ लोग मिले। उनमें कुल पचास के करीब छात्र थे। उन्होंने कहा कि आप मराठी लिखने वाले लोगों पर कैसे काम कर रहें हैं। वे हैरान थे कि हरियाणा में जोतिबा फुले की विचारधारा ऩए रूप में उभर कर आ रही है। हम दिल्ली में कुछ शोधार्थी और अध्यापकों से मिले। उन्होंने कहा कि आप इतने कठिन समय में पत्रिका कैसे निकाल रहे हैं? यह बहुत ही महत्वपूर्ण काम है। इसको जरूर निकालते रहें और हमारा सहयोग हमेशा आपके साथ रहेगा।

मेरे पास हर रोज पांच-सात फोन कॉल्स आते रहते हैं। वे सुझाव भी देते हैं कि हमारे आस-पास के स्कूल-कालेज और पुस्तकालयों में पत्रिका को भेजा जाना चाहिये। मैने

दिल्ली में एक बुजुर्ग को पत्रिका दी, उन्होंने सुझाव दिया कि आप पत्रिका निकाल रहे हैं और हमें भेज रहे हैं। आप अपने स्तर पर जहां रहते हो, जहां बैठते हो, उनका वहाँ पर पाठ किया जाए खासतौर से फुले दंपत्ति के बारे में। यह खुद में एक उत्सव है। सोशल मिडिया और वेबसाईट से हमें अपने लेखकों को उनके साथ जोड़ना चाहिए। हमारे सारे अंक पीडीएफ में है, बहुत लोगों ने इसकी सरहाना की है। एक बड़ी संख्या अब डिजिटल भी बनी है। उसको लोग संभाल रहे हैं। लेखकों को भी हमें जोड़ना है। कार्यक्रमों को भी ज्यादा से ज्यादा सोशल मिडिया पर डालें। सृजन उत्सव का विस्तार होना चाहिए, हर जिले में जाने की कोशिश करें। यह एक महत्वपूर्ण सुझाव है।

योगेश - हमारी वेबासईट को हर महीने 13 से 15 हजार पाठक विजिट और पढ़ रहे हैं। देस हरियाणा की वेबसाइट पर ऑडियो, विडियो, टेक्स्ट और पीडीएफ उपलब्ध हैं। इन चारों फॉर्मेट की वजह से ही चारों तरह के लोग इसमें जुड़ रहे हैं। हम वेबसाइट को साहित्येतर बनाने की कोशिश भी कर रहे हैं। इसके जरिए लोकधारा पर जोर दिया जा रहा है। पिछले दिनों हुई 'रामचरित मानस' संबंधी बहस पर वेबसाइट ने उपयुक्त भूमिका निभाई। वेबसाइट से कानपुर, यूपी, दिल्ली तथा वाराणसी आदि शहरों से संबंधित लोग भी जुड़े हुए हैं। वेबसाइट को स्टूडेंट फ्रेंडली भी बनाने की लगातार कोशिश की जा रही है। इससे हिंदी साहित्य ही नहीं अन्य संकायों के छात्र भी जुड़ रहे हैं क्योंकि उन्हें अपने प्रयोजन की सामग्री वेबसाइट पर मिल रही है। हमने हरियाणा के इतिहास संबंधित सामग्री भी इस पर डाली है। इसके साथ ही कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर अमरनाथ जी की लंबी सिरिज पर लेख चल रहे हैं। हमारी वेबसाइट के माध्यम से हिंदी साहित्य के आलोचकों की दृष्टियों को भी समझा जा सकता है। अभी वेबसाईट के न्यूजलेटर बनाने की कोशिश जारी है। स्पोटिफाई पर पोडकास्ट को सुनना भी लोग काफी पसंद कर रहे हैं। स्कूल के बच्चों को हमें अपने कार्यक्रमों और गतिविधियों से जोड़ने की जरूरत है।

गुरदीप - सोशल मीडिया पर हम निरंतर अपडेट रहते हैं, जिसकी वजह से किसी भी पाठक को सामग्री ढूंढने में दिक्कत ना हो। व्हाट्सएप्प पर हमारे पास काफी मैसेज आते हैं कि हमें यह अंक चाहिए, संविधान का अंक बहुत पसंद आया है। हमारी अलग-अलग विश्वविद्यालयों के काफी शोधार्थियों संपर्क हैं, उनसे बात होने पर उनका कहना था कि ऐसे अंक या सामग्री किसी अन्य जगह नहीं मिल रही है। जेएनयू, दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों ने बहुत सराहना की और संविधान वाले अंक पर चर्चा करने की योजना बताई। जब मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न प्रोफेसर से मिला तो उन्होने जोतिबा फुले- सावित्री फुले वाले अंक पर कहा कि हमें नहीं लगता कि हम भी ऐसा कठिन कार्य कर सकते हैं।

आज के प्रतिकूल समय में इस तरह का अंक निकालना किसी जोखिम भरे काम से कम नहीं है। इस अंक का सबसे अच्छा प्रभाव रहा है।

जब मैं दिल्ली में राष्ट्रीय दलित महोत्सव में गया तो मुझे बल्ली सिंह चीमा जी से बात करने का मौका मिला। चीमा जी उगराहां किसान यूनियन के वरिष्ठ पदाधिकारी हैं और प्रसिद्ध कवि भी हैं। करीब 1 घंटा हमने बातचीत की। मैंने उन्हें हमारे किसान आंदोलन के अंक और संविधान वाले अंक के बारे में बताया जिससे वो बहुत प्रभावित भी हुए। उन्होंने कहा कि देस हरियाणा बहुत ही सराहनीय काम कर रहा है और हमने भी इस बारे में काफी चर्चाएं सुनी हैं। एक बात यह कि आज का दौर सोशल मीडिया का दौर है और हमारे साथी सोशल मीडिया पर ज्यादा एक्टिव नहीं हैं।

हमारे यूट्यूब चैनल पर बहुत ही अच्छी साहित्यिक और राजनीतिक चेतना से भरपूर सामग्री है। चैनल से जुड़े रहिए ताकि जिस विचार पर हम काम कर रहे हैं, वह निरंतर आगे बढ़ता रहे। छात्रों की मांग है कि हर महीने कम से कम एक गोष्ठी जरूर की जाए।

अरुण कैहरबा - देस हरियाणा की सभी गतिविधियां, यात्राएं, पत्रिका-कार्य आदि सुखद स्मृतियों का हिस्सा हैं। हमारे पार निरंतर फोन कॉल्स आते हैं कि, आप सृजन उत्सव कब कर रहे हो? आसपास के तमाम साथी भी इसके लिए बोल रहे हैं। पत्रिका में देरी होने की वजह से भी हमें लगातार उलाहने मिलते हैं, जो पाठकों की जिज्ञासाओं को रेखांकित करता है। दूसरों की पत्रिका से हमें पता लगता है हम कितना महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। सभी साथियों में सृजन उत्सव के लिए उत्सुकता है। स्थानीय स्तर पर हम लगातार गोष्ठी कर रहे हैं जिसमें देस हरियाणा भाग ले रहा है। हमारे संयुक्त कार्यक्रम हो रहे हैं। विकेंद्रीकरण और निरंतरता की आपकी बात सही है। इस से ज्यादा साथी जुड़ पाएंगे। नए साथी जुड़ेंगे। एक जगह सब पहुंचना मुश्किल होगा। लेकिन निरंतरता में गोष्ठियां होनी चाहिए। उप सृजन-उत्सव के तौर पर हमें करना चाहिए। सत्यभूमि निश्चित तौर पर ऐसी जगह बन रही है जहां अपने आप ऊर्जा का संचार हो रहा है। सब की अपनी साझी कर्मभूमि महसूस हो रही है। हमारे देश और समाज को जिसकी जरूरत है ऐसी चीज बन रही है। इंद्री में भी एक जिला स्तर का कार्यक्रम हम कवराएंगे, इसकी योजना बनाकर हम आगे बात करेंगे।

सुनील थुआ - कुछ दिनों से मेरे पास एक अध्यापक का फोन लगातार आ रहा है कि मुझे संविधान का अंक चाहिए। वह स्पेशल हिसार से मेरे गांव में वह अंक लेने के लिए आए और कहा कि मुझे आपसे हाथ में अंक चाहिए। मैंने उनसे कहा कि मैं आपको पोस्ट के जरीए भेज दूंगा लेकिन वे फिर भी घर आए। सिद्दिक अहमद मेव से बात हुई उन्होंने देस हरियाणा और सृजन उत्सव में साथ जुड़ने की भावना जताई। उन्होंने हमें मेवात में आने का निमंत्रण दिया है और साथ मिल कर कार्यक्रम करने की उत्सुकता है। मेरा सुझाव है कि मार्च

या अप्रैल में जरूर कोई ऑफलाइन कार्यक्रम होना चाहिए, इस से सभी में साल भर की उर्जा आ जाती है।

नरेश सैनी - हम नए साथियों को जोड़ पा रहे हैं। सृजन उत्सव कब होगा इसके लिए हमारे पास फोन आ रहे हैं। पत्रिका के जरिए बहुत सारे साथी संपर्क में आए हैं। पुस्तकालय की समिति के सदस्य खासतौर से हमें स्कूल में मिलने आए कि दोबारा कार्यक्रम हो हमें जरूर बुलाएं और बताया कि पत्रिका देरी से पहुंच रही है। सृजन यात्रा में शामिल होने की इच्छा भी जताई। मेरा सुझाव है कि सत्यभूमि पर सृजन उत्सव से पहले एक कार्यक्रम होना चाहिए। अबकी बार हमें नए प्रतिमानों के साथ सृजन उत्सव करने की रणनीति बनाएंगे जिसमें कई नई गतिविधियां भी शामिल की जा सकती हैं।

राजकुमार जांगड़ा - पिछले दो अंकों की बहुत मांग आई है। एक ही व्यक्ति ने अपने छात्रों के लिए हमसे 40 कापी लीं। व्यक्तिगत रुप से भी बहुत लोगों ने ली है। उन सबने बहुत सरहाना की। सावित्री फुले अंक को देख कर तो बहुत ही उत्साह उनके अंदर आया है। ऐसे अंक आगे भी आने चाहिए। हमें सृजन उत्सव की घोषणा का इंतजार है।

नरेश दहिया - जितने भी आ रहें हैं वे सभी बड़ी पत्रिकाओं को टक्कर दे रहें हैं। ऐसा लगता है पढ़ने के लिए लोग तैयार ही बैठे हैं। सावित्री बाई फुले वाले अंक को, संविधान के अंक को लोग खेतों में पानी लगाते-लगाते पढ़ रहे हैं। लोगों में बहुत उत्साह है जिसपर हमें और भी नए तरीके से काम करने की जरूरत है।

वीरेन्द्र - हमारे जितने भी अंक आते हैं उन्हें व्हाट्सएप्प ग्रुप में भी साझा किया जाए ताकि सभी इच्छुक उसे आसानी से प्राप्त करके पढ़ सके। सभी की सृजन उत्सव पर बहुत जिज्ञासा है। हमें भी मेवात वाले लोग बोल रहे हैं कि इस बार हमें भी शामिल किया जाए।

जयपाल - जिस समय में हम जी रहे हैं, उस समय के सवालों के साथ सारे कार्य उन्हें संबोधित है। स्वतंत्रता की कविताएं, जोतिबा फुले पत्र अंक और संविधान अंक तीनों अंक मौजूदा समाजिक समस्याओं, विमर्श, वाद-विवाद और प्रश्नों पर केंद्रित हैं। ये अंक पहले के अंकों से ज्यादा जुड़े हुए महसूस हुए। मेरे पास एक छात्र का फोन आया कि एक लाइब्रेरी में जोतिबा फुले अंक पढ़ा, यह हमें भी चाहिए। संविधान अंक – तर्कशील सोसाइटी वालों ने दस पत्रिकाएं ली, सभी ने कहा कि इसको जरूर पढ़ना चाहिए। अंक समय पर न मिलने की समस्या है, बुक डिपो वालों ने भी अंक खत्म होने की बात कही, कि उसको जल्दी ही भेज दिया करें। यात्रा और उत्सव की बहुत बात हो रही है। बुक फेयर में देस हरियाणा की सार्थक भूमिका रहनी चाहिए।

मंगत राम शास्त्री - आज के समय में पत्रिका का महत्वपूर्ण हस्तक्षेप कार्य है। इसको लगातार जारी रखा जाए। हमें इसकी हार्ड कापी जरूर चाहिए, एक कॉपी आनलाईन भी

हो, लेकिन हार्ड कॉपी जरूर होनी चाहिए। वही हमारे पास सुरक्षित बचेगी। हम पुराने लोग है, हमें संरक्षण करने लायक लगती है, जिसे उठाकर कभी भी पढ़ा जा सकती है। सृजन उत्सव, हम इसमें हर लिहाज से हम साथ हैं। आपके साथ खड़ें हैं, जो ड्यूटी लगेगी उसको करेंगे।

परमानंद शास्त्री - सभी साथियों से बात कर के अच्छा लगा। मीटिंग कई दिनों के बाद की जा रही है। पिछले दो अंकों का बड़ी गैदरींग में विमोचन किया गया है। लेकिन प्रतियां बहुत कम थीं, जिससे कुछ लोग पत्रिका से वंचित रह गए। संविधान विशेषांक बहुत खास रहा। हमारा अनुभव बहुत अच्छा रहा है। पुराने समय से जुड़े हुए लोगों के भी कॉल्स आए और बताया कि ये पिछले चार अंक हमें सबसे बेहतर लगे। अध्यापक यूनियन के लोगों ने भी हमसे पत्रिकाएं लीं। हम सिरसा में भी एक कार्यक्रम जरूर करवाना चाहेंगे।

अमरजीत - देस हरियणा से जुड़ना मेरे लिये गर्व की बात है। देस हरियाणा के हर कार्यक्रम से दिल को उत्साह मिलता है कि हमें हमारे समाज के लिए कुछ करना चाहिए। गुरदीप जी ने मुझे देस हरियाणा से जोड़ा। मैं दिल से उनका धन्यवाद करता हूँ। आने वाले समय में हम देस हरियाणा के चैनल को एक व्यवस्थित व सुचारु रूप से चलाने की कोशिश करेंगे। इसके लिए मैंने एक टेलिग्राम चैनल बनाने की सोची है जिसमें अनलिमिटेड सदस्यों को जोड़ा जा सकता है।

रवीन्द्र गासो - आप बहुत महत्वपूर्ण काम कर रहे है। हम आपके साथ हैं। हम आपको हर तरह का सहयोग देंगे। स्कूलों, कालेजों में भी छोटे रूप में सिरिज कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए और देस हरियाणा का अंक उसमें जाए। हम आपके साथ हैं।

अविनाश सैनी - मैं सभी साथियों की बातों से सहमत हूँ। सृजन-उत्सव के लिए सितंबर का समय उचित है। मेवात की बात आ रही है तो वहां के लिए भी जरूर योजना बनानी चाहिए। उसकी यात्रा होनी चाहिए। रहीम और अन्य संतों से उसको जोड़कर साझी परंपरा को उभारा जाना चाहिए। हम दूसरी संस्थाओं के साथ मिलकर भी काम कर सकते हैं। अगर कोई हमें शामिल या आमंत्रित करे तो हमें उनका भी सहयोग करना चाहिए।

प्रोफेसर सुभाष चंद्र - आप सभी का धन्यवाद, हम कमियों को सुधारने की कोशिश करेंगे। हमारे कार्य को लेकर उत्साह सभी में दिखाई देता है। हमारी पत्रिका हरियाणा में बहुत अच्छा काम कर रही है। साहित्य के दायरे से बाहर निकल कर भी हमारी पत्रिका काम कर रही है। मेरी इच्छा है आप की शक्ति को देखते हुए संविधान अंक की कम से कम 50 हजार प्रतियां जाएं और हो सके तो जन-जन तक जाए।

हमारी टीम की भी इसमें एक खास भूमिका बनती है। बुद्धिजिवी के तौर पर हम किस तरह अपना योगदान दें, इस पर हमें सोचना होगा। जितना राजनीतिक-आर्थिक, सांस्कृतिक

संकट है, इस में हमें अपना व्यक्तिगत रूप से योगदान देना है। संविधान की कॉपी को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाएं और एक दूसरे से वापिस लेकर पढवाएं। पत्रिका को सिर्फ लेकर रखना नहीं हैं, उसे पढ़कर अन्य लोगों को भी पढ़ाना है। लोगों तक सही बात पहुंचाएं। हमें इस समय के महत्व और बेचैनी का पता है। एक दिशा हमें बनानी है। समय हमें पुकार रहा है। हमें अपने सारी गतिविधियों को इस दिशा में लगाना होगा।

इस वक्त क्रियेटिव लोगों पर सबसे बड़ा हमला है, इसलिए हमारी जिम्मेदारी ही सबसे अधिक है। डर और भय के वातावरण को तोड़ना है। लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होना है। संविधान के बहाने से हम अब तक की प्रगतिशील धारा और अधिकारों को लोगों के बीच में रख सकते हैं। यह केवल एक अंक नहीं है, यह एक धारा है जो लगातार चलती रहेगी। संविधान को जन-जन तक पहुंचाना और उनमें एक समझ विकसित करना ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। हमारे कार्यक्रमों, उत्सवों, यात्राओं ने लोगों के मन पर बहुत बड़ी छाप छोड़ी, अपने से बाहर निकल कर लोग सोचना चाहते हैं। कुछ समस्याओं की वजह से दो साल से हम बौद्धिक गोष्ठियां नहीं कर पा रहे हैं। फिर भी हमने छोटी गतिविधियों के माध्यम से उनको जारी रखने की कोशिश की है।

हमने 11-14 अप्रैल का कार्यक्रम रखने का सोचा था। अब तक की बात से मैंने महसूस किया कि हमें अनेक कार्यक्रम करने होंगे। एक बार कर जश्न मना कर चुप नहीं बैठना है। 2023 तक एक-एक दिन के कई कार्यक्रम होने चाहिए। जहां संभव हो इसका विस्तार किया जाना चाहिए। हम सब लोग उन कार्यक्रमों में जाएंगे। एक जगह नहीं होनी चाहिए, अलग-अलग जगहों पर जाकर कार्यक्रम करेंगे की रूपरेखा बनाएंगे ताकि सभी जगहों के लोग उस वैचारिकी से लाभान्वित हो सकें।

सृजन यात्रा या साहित्यकर्मियों की यात्रा की जरूरत है। हम इसको जरूर करेंगे। सत्यभूमि उत्तर भारत का एक केंद्र बनने वाला है। हम 11 अप्रैल को इसका उद्घाटन करेंगे। हम सितम्बर में सृजन उत्सव करने की योजना बना रहे हैं। अप्रैल में महात्मा फुले और बाबासाहेब अम्बेडकर की जयंती पर कार्यक्रम किये जाएंगे। छोटी यात्रा और गोष्ठियां चलती रहेंगी। यात्रा अलग-अलग लोक देवताओं आदि पर भी कर सकते हैं।आने वाले समय में इसके अनुसार हम एक अभियान की तरह गतिविधियां करेंगे। हर लेखक, पाठक का दरवाजा खटखटाएंगे। हमारी वेबसाईट गंभीर सामग्री का अड्डा बनी है। हमें इसका पोस्ट किया जाना चाहिए अलग-अलग मौकों पर। वर्तमान लगातार कुछ न कुछ करते रहने का, बर्फ पर सुआ मारने का समय है। हमें बिना थके लगातार काम करना है और धीरे-धीरे ही काम करने की जरूरत है जिससे हम उसे लंबे अंतराल तक कर सकें। महीने में एक आनलाईन गोष्ठी का सुझाव बहुत अच्छा है। इसको जरूर किया जाना चाहिए। वक्ताओं

को बुलाया जाना चाहिए। इसका विडियो बने, ट्रांसक्रीप्ट हो, आडियो हो। हर तरीके से इस पर काम करना चाहिए। आने वाले साल में बहुत सारी चीजों का निर्णय होना है। इसमें जो लोग निर्णय बनाएंगे हमें उसमें शामिल होना चाहिए।

आखिर हासिल – कुसुमाग्रज

आधी रात
बीत चुकी तो,
शहर के पाँचों पुतले
एक थड़े पर बैठ गए
और आंसू पिघलने लगे

ज्योति, बोले
"मैं तो आखिर ठहरा मालियों का"

शिवाजी महाराज भी बोले
"और मैं सिर्फ मराठों का "

बोले अंबेडकर,
"और मैं तो बोधियों का ही ठहरा"।

तिलक ने कहा कि
"मैं चित्तपावन ब्रह्माणों का हूं।"

गांधी जी
तब रूंधा गला खंकारकर बोले
"आप बड़े खुशकिस्मत हैं तब
कम से कम एक जमात तो फिर भी
आप
के पीछे है।
मेरे पीछे तो
सरकारी कचहरियों की दीवारें है!!

मराठी से अनुवाद गुलजार

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9050182156
	-	योगेश शर्मा	9896957994
यमुनानगर	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	कुलदीप	9729682692
जीन्द	-	मंगतराम शास्त्री	9416513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
भिवानी	-	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	-	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	सिद्दीक अहमद मेव	9813800164
शिमला	-	एस आर हरनोट	01772625092
	-	रितिका	9810171896
राजस्थान (परलीका)	-	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	-	www.notnul.lcom/desharyana	